मेधावी

श्री रांगेय राघव

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

मेधावी

श्री रांगेय राघव

१९४७

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

समर्पण

स्वर्गीय पूज्य पिता

के

चरणों में

परिचय

श्री रांगेय राघव हिन्दी के उदीयमान लेखकों में हैं। आप के अनेक उपन्यास, कहानी-संग्रह, निबंध तथा काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत रचना आप का प्रथम प्रबंध-काव्य है। प्राप्त हस्त-लिखित प्रबंध-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण एकेडेमी की ओर से इसे पुरस्कृत किया गया था। गठन, शैली तथा विचारधारा की दृष्टि से पाठकगण इसे असाधारण पावेंगे। श्री रांगेय राघव ने इस ग्रंथ में कुछ नई परंपराओं का सूत्रपात किया है। विश्वास है हिन्दी-प्रेमी पाठक इसका समुचित स्वागत करेंगे।

धीरेन्द्र वर्मा

संयुक्त मंत्री (हिन्दी विभाग)

प्राक्कथन

प्रस्तुत काव्य इतिहास की तरह बद्ध नहीं है। अनुभूति और विचार के कारण कहीं कहीं इतिहास की तिथियों का ध्यान नहीं रखा गया क्योंकि तिथियों का महत्व भी स्वयं अनुभूति में है, इस प्रकार का काव्य लिखते समय मात्र !

दर्शन, भूगोल, इतिहास, काव्य, समाजशास्त्र आदि सब का इसमें सम्मिश्रण है, अतः इसकी भूमि बहुत विस्तीर्ण है।

एक नायिका एक नायक के चरित्र में इतना रूप समाना असंभव है। इस काव्य के नायक-नायिका—इतिहास और गति हैं, और मेधावी के द्वारा वे प्रगट हुए हैं।

मैंने किसी अंत को ध्येय या लक्ष्य करके साबित नहीं किया—जीवन की गति ने अपने आप यह निष्कर्ष प्रतिध्वनित किये हैं।

प्रबंध होने के कारण यह प्रबंध-काव्य है। प्रबंध-परंपरा की अधिकांश बातें इसमें नवीन रूप से आ अवश्य गई हैं।

मेरे विचारों से जो नहीं सहमत हो सकते उन्हें कविता से उपेक्षा दिखाना ठीक नहीं होगा।

सर्ग—१

आख्यान :

एक दिन व्याकुल मेधावी बैठ कर चिंतन करने लगा। अपनी पृथ्वी की लघुता से ऊब कर उसने देखा अनंत आकाश में अनेक तारा नृत्य कर रहे थे—

हृदय की युगयुगांत की आग
अरे मानव की तृष्णा जाग
बोल दे आज नाप दे बोल
तिमिर की लहर-लहर का प्यार

स्तब्ध रे मौन गहन सुनसान
हुए खंडहर यौवन के स्वप्न
बोल दे आज पराजय बोल
समीरण में भर दे झंकार

आह आते हैं कितने स्वप्न
बिखर कर हो जाते हैं भग्न
अरे साम्राज्यों से अरमान
सभी हैं खंडहर बन कर मग्न

मौन हो आज गगन हो मौन
मौन हो क्षण भर ओ वातास

मौन हो जीवन के चल गान
मौन हो आज मृत्यु के पाश

बोल दे ओ सूनेपन बोल
बोल दे मेरे मन की आग
प्यार ही है अब आज विराग
बोल दे मानव के उन्माद

आज नयनों में फिर से मुक्त
नाच ले युग युग की निरबाध
महागति जिसका ओर न छोर
सृष्टि के जीवन का उल्लास

नाच री नाच सृजन की कोर
नाच रे नाच ध्वंस के छोर
आत्मलय जग का बने विकास
मरण में जन्म, जन्म में मृत्यु
तिमिर की घन निस्तब्धा तोड़
चमक उठ ओ चेतन कन जाग

कल्पना के पंखों सा सत्य
जागते हैं वे भूले अब्द
समय के स्तर को रह रह भेद
गूँजते प्रतिध्वनि करते शब्द

गहन दूर्वा में ज्यों हिल्लोल
चमकती रवि किरणों से दीप्त
सघन केशों में ज्यों वह मांग
दमकती है सुहाग से स्फीत
आज अपराजित जीवन शक्ति
जाग उठ भर कर यौवन गीत

अरे इतिहास !
सतत नर्त्तन में निरत विकास
बोल उठ मेरे मन से बोल
तिमिर के यह अंधे पट खोल !

एक ही खोज
युगों की प्यासी खोज —
मनुज का ध्येय ?
सृष्टि का क्या उद्देश्य ?
और निर्बोध !

हँस उठा दूर दूर तक मौन
कर उठा अट्टहास आकाश
अरे मैं—'मैं' मेधा से दीप्त
छोड़ता हूँ जो श्वास
वही जीवन का सत्य !
वही जीवन की झूँठ !!

किंतु जीवन है भूत
भूत का चेतन रूप

कल्पना सा सुकुमार
सुदृढ़ शैलों सा उन्नत रूप;
कौन करता है हाहाकार
कांप उठते तारे जो दूर
विकल श्रमश्लथ सा सुलग समीर
पटकता क्यों फन चूर ?

विकल 'मैं' का उन्माद
विश्व का केन्द्र
विश्व की स्फूर्त्ति

सभी सापेक्ष रूप से बद्ध
गीत की लयगति सा संबंध
चल रहा अंतर्द्वन्द्व !

प्राण का छोटा दीप
प्रकाशित है ब्रह्माण्ड
विकल मेधा की पैनी रश्मि
भेद दे अंतराल का ध्वांत
बज उठे वीणा के वह तार
कर उठे मोहाकुल उद्भ्रांत

यही अणु जो कल थे सम्राट
भिखारी के तन में हैं बद्ध
यही रागिणि जो कल थी गीत
आज केवल है लहरिल गूंज
आह जो कल थी चितवन मत्त
झुकी पलकों की है अभिशाप
पाप है मुक्ति पुण्य जब पाप
आज भी पाप पुण्य का भेद
महागति का उच्छृंखल श्वास !

आह मानव के पुत्र !
दिशावधि तेरा है विस्तार
सभी में तू, सब तुझमें लीन
बीन की रागिणि, रागिणि बीन,
जाग सिद्धार्थ, या कि चंगेज़
नहीं है मुक्ति, न बंधन मेल,
आज दोनों ही तो हैं खेल !

हिल उठी फिर कानन में छाँह

गा उठा फिर सूना आकाश
रन्ध्र सी धरणी फिर उद्गीत
काँपता क्यों उर बन कर पात
आज तो पतझर स्वयं बसंत,
अमिट परिवर्त्तन से कर प्यार।
अरे भ्रम माया में अभिभूत
मूर्खता से अपनी सुखमान
सत्य को कहता है तू व्यर्थ
सत्य को समझा है संकोच ?
सत्य ही तो है एक रहस्य
अगम मानव का ध्येय अनंत
महागति देख नयन विस्फार
न कोई आदि न कोई अंत
स्वयं यह तेरा विकल विचार
भूत के महाशैल की छाँह !
पकड़ कर करुणा की मृदु बाँह
आज सुन अणु अणु में संगीत
आज जीवन में है उल्लास
देख कल के तन में से आज
निकल आया है नवल कुमार
आज ही है भविष्य का गर्भ
महानर्त्तन पर ही यह खेद

कौन जाता है यों चुपचाप
तिमिर में नतशिर व्यथित उदास
देखता हूँ असीम विस्तार
एक रवि या लाखों नक्षत्र

उन्हीं में यह नगण्य सी भूमि
इसी पर इतना हाहाकार !

अरे मानव क्यों इतना गर्व
कि तू ही है सब का चिर केन्द्र ?
बना कर परमेश्वर का दंभ
कर रहा अपना तू अपमान ?
गये वह दिन जब ताराधूलि
देवताओं की छाया म्लान,
आज तो वह भी चलते भूत
कि जैसे पृथ्वी का अभिसार !

देख
नभ है कितना निस्सीम !
कल्पना के पंखों को खोल
न तिर सकता है ज्ञान विहंग
अपरिमित दृग लौटे हैं हार
अभी तक शून्य द्वार है बंद
अगन भी कितने कम नक्षत्र
शून्य ही शून्य रहा है फैल
अरे कितने विराट भी अल्प
बालकों से करते हैं खेल
दास पृथ्वी का लघुतम चंद्र
भूमि है अंशुमालि की छाँह—
और वह रवि—जिससे उद्भूत
अग्नि की लपटें दीर्घाकार
हरहरातीं विशून्य में फैल
लपलपातीं शैलों सी नाच,

स्वयं वह एक बिंदु सा अल्प
भ्रमण करता है व्याकुल क्लांत ···

और चल अभी देख चल और
एक छायापथ जैसे चक्र
बना है घूम रहा द्युतिमान
कि जिसके दूर दूर नक्षत्र
भूमि से लगते हैं ज्यों पास
स्वयं अपनी गति में तल्लीन
घूमते रहते हैं सविलास
ज्योति की शक्ति बने विश्रांत
शून्य में लय होते हैं भ्रांत
करोड़ों सूर्य्यों का आकार
लुप्त होता जिनमें अनजान
धधकते आजायें यदि पास
भाफ बन कर उड़ जाये सूर्य्य
देख कितनी निस्सीमा आज···

चली जो रश्मि ज्योति की मुक्त
लक्ष या कोटि वर्ष के बाद
आज पहुँची है भूतल मौन
आह परिवर्त्तन कितना आज···
स्रोत के तारे का अस्तित्व
अस्ति वा नास्ति दोल पर शेष;

और वह अंतराल का भार
ज्योति ध्वनि की लहरों से स्फीत
कहीं पर घोर तिमिर का केन्द्र
कहीं पर अंधकार का सार

और यह सृजन और संहार
चल रहा है कितना निर्व्याज !

एक गति का अतिमुक्त प्रवाह
उसी में से निकला यह सूर्य्य
और फिर ग्रह उपग्रह का लास
बचाने अपनी सत्ता आज
सभी गतिमय चलते अश्रांत
आदि अज्ञात
अंत अज्ञात
एक यह गति का माध्यम शेष...
न जाने कैसी कैसी सृष्टि
न जाने होंगे कितने प्राण
न जाने रूप और अज्ञान
किंतु होता है मन में स्नेह
जानने की मीठी सी चाह
अरे दीपावलि सी भर रूप
भर रही है मन में सौहार्द्र
ज्ञान की ज्योति फेंक द्युतिमान
एक दिन मानव सबको जान
हँस सकेगा चिर कांत !

आह रे गाता रहे समीर
एक 'मैं' में इस क्षण सब लीन...
मौन हैं मौन पहाड़ अपार
शिखर वे उन्नत दीर्घाकार,
और नीले जल में चिरसात्
बैजनी आभा का विस्तार,

डूबता है गंभीर प्रशांत
झलमलाते तारों का मौन—
मौन इंगित प्रतिबिंबित मूक
बुलाता है जल में से आज
देखता हूँ मैं चारों ओर
अरे अंतर्बाहर का साम्य
सत्य के अगणित शाखामूल
सत्य है भूत, प्रकृति व्यापार
और मानव का ज्ञान अपार
आह सापेक्ष रूप का लास
निरंतर खोज, निरंतर नृत्य...

भीमनादों से शून्य गभीर
बुलाता मानव मेधा आज,
व्यक्ति का अहंकार क्यों अल्प
कर उठा उसके संमुख लाज
हँस उठा क्यों छायापथ बोल
गूंजता शिरा शिरा में नाद
जन्म का यह जाला जंजाल
मरण के महाजाल में बद्ध
और मानव को तृप्ति न शांति...

नृत्यमय गीतों का यह लास
गूंजता दिग्दिगंत में आज
अरे शाश्वत का यह हिंदोल
बन गया परिवर्त्तन का प्यार
कह रहा है यह शून्य विशाल
अल्प है पृथ्वी अणु से अल्प

और मैं देख रहा अति मूक—
नाचने लगा सृष्टि का रूप
अगन ताराओं का वह जाल,
देखता रहा मौन मैं मौन
नयन से हटता जाता जाल...

सर्ग–२

आख्यान :

नक्षत्रों का नृत्य स्फुलिंगों के खेल की भांति उसके नयनों के आगे पुलकता रहा ।

'नक्षत्रों का गीत-नृत्य'

सौर चक्र में अविरत नर्त्तन

एक पिंड या अणु प्रकाश का
फूट चला अविरत निनाद कर
उसमें से अगनित जग निकले
नाचे आकर्षण दोला पर

सृष्टि गहन में अणु अणु नर्त्तन
शून्य अपरिमित नयन मचलते
पंख कल्पना के फैला कर
मानव के अरमान उमड़ते

कैसे छूलूँ उन तारों को
क्या होता है जाने उन पर
मेरी पृथ्वी अणु से छोटी
नाच रही है थिर थिर मंथर

आह मधुर यह प्रत्यावर्त्तन

आज सूर्य्य की महाज्योति में
नाचें मंगल, पृथ्वी द्रिम द्रिम
अगन प्रभा से आभासित से
ग्रह उपग्रह नभ में कंपित रे

एक शून्य के महावृत्त में
चलदल से लहराते तारा
सीमाहीन विराट कवरि में
सुरभित फूलों की जगमग रे

जादू खेल रहा है कैसा
आदि न अंत कहीं है जिसके
है पर लघु अनुभूति बना अणु
डोल रहा बन लहर लहर रे

मादकता के महासिंधु में
लहरें अगनित खेलें रे
भर कर प्याला धार उफनती
होठों में रस फैलें रे

सूर्य्य :

युग युग बीते अब तक जलता
यह विरहानल बुझता जाता
कोटि अब्द बीतें रागिणि से
वंशी पर सूनापन छाता
योगी सा मैं देख रहा हूँ
नभ में चलते अगनित पंथी
जीवन योद्धा ढूंढ रहे क्या
साथ लिये रे सैनिक संगी

मैं जीवन का पोषक रे

मेरे श्वासों में वैश्वानर
उन्मद चिर शोषक रे

खेले कौन ?
जागे कौन ?
जगावे कौन ?

छायापथ :

अगनित तारा मुझमें रे
अरे सूर्य्य तू कितना छोटा
दर्प भरा क्यों जलता
सलज धरणि को वैभव दिखला
लघुता से क्यों छलता

तारा :

हम सब रजकण
मिल मिल घूमे
एक रजत की धारा
खिल खिल झूमे
सृष्टि सुंदरी की मेखल से
शून्य नितंबों पर बंधित से
कोटि कोटि तारे जुगनू से
पावस में हैं जगते
कैसा यह अभिसार सलोना
नूपुर रुनझुन बजते

एक सुदूर का तारा :

लाखों ज्योति-वर्ष के पथ पर

चल कर किरन सुहागिन
धरणि सखी से मिलने पाये—
उतर उतर कर शून्य स्तरों के
सोपानों पर गाये
टिम टिम
टिम टिम

पृथ्वी :

रवि प्रियतम बलि जाऊं
अहर्निशा तेरे स्पर्शों से
अपना सुख समझाऊं ?
एक यहाँ मानव रहता है
मेरे अणु से छोटा
पर मेधा से जीवित जाग्रत
नापे वैभव सारा

मानव :

कौन हँसे रे शून्य सिन्धु में
मेरी बुद्धि बनी है जाल
जिसमें ग्रह उपग्रह सब तारा
फँसे हुए सब काल
एक बूंद की बनी तरलता
मेधा सागर जाने
झुमझुम झलमल कांपे नयना
मन में सिहरें गाने
झिलमिल
झिलमिल
बुद्बुद् से लहराये रे धारा

ज्योति ग्रहण
करले दर्पण
प्रतिबिंब सृजन की धारा
एक दूसरे से प्रतिबिंबित
अपनेपन के पालक

शून्य :

प्राण भ्रमित मन
जीव तृषित त्रण
ज्योति निसृत कण
भ्रम भ्रम भ्रम
चंचल पथ पर
चिर गति अथ पर
सृजन सुइति पर
क्रम क्रम क्रम

तारा :

हम नाच रहे युग युग से
हम नाच रहे कल्पों से
हम वर्षों के सागर में
नैया खेते चल-चल रे
धरणी दिखती न हमें है
हम अपनी गति में तन्मय
यह रवि है एक किरण सा

बुझ जायेगा तम में लय
घूम घूम ज्योति कल
गीत सा विराट पल

गूंज-सा सभीत छल
स्वप्न दिख जा
कैसा वह फूल सखि !
तितली अनेक सखि !
जिस पर लें भूल सखि !
रूढ़ि मिट जा

मृत्यु जहाँ बूंद एक
जीवन भी खेल एक
मानव सुअल्प एक
खोल दे नयन
जिन के भ्रमित रव
सागर इमन सखि
कैसी विराट छवि
प्रात हो सृजन

एक विस्तृत है नशा सा
स्वप्न सुधियों से चले हम
या किसी अज्ञात स्तर पर
प्रात के नीहार कन हम

टूट जायेगा जभी अणु
हम पुनः उसमें घुलेंगे
आज आंधी बन चले जो
एक श्वास बने मिलेंगे

नूपुर छन छन
गति का नर्त्तन
निस्तब्धा फैली हो विराट
बन एक चिरंतन व्याप्ति अमर

करुणा की गूंज उठे उस पर
अविराम सृजन

हम टूट टूट
हो चूर चूर
हैं अंतराल में लय विलीन

हम फूट फूट
द्युति लूट लूट
हम पुराचीन चिर नित नवीन

अपना नर्त्तन
उठती प्रतिध्वनि
जैसे फूलों पर भ्रमरों की
अलसाई सी कंपित गुनगुन

टिमटिम
टिमटिम
जैसे मानव के वैभव से
उठती खुमार की गूंज सजनि

झलमल
झलमल
जैसे गिरि सरिता उपलों में
करती जाती है मंजु क्वणन

झिलमिल
झिलमिल
जैसे चर्खे से तूल खिंचे
उठती आती है टीस ध्वनन

रलमल
रलमल
जैसे कानन में विहगों का
कलरव करता रह रह गुंजन

हम एक अनाहत नाद बने
भरते रहते हैं शून्य प्रमन
मृदु अंतराल में लहर बने
हैं घूम रहे पल पल क्षण क्षण

तारों का प्रिय सुंदर नर्त्तन
गति का नर्त्तन
नूपुर छन छन

कितना विराट है शून्य खिला
जिसमें हम अणु मकरंद अमल
परिवर्त्तन के झोंकों से उड़
दिशि दिशि में फैले हैं खिल खिल

हम आकर्षण के तारों से
संसृति वीणा में हैं जकड़े
गति उंगली फिरती है हम पर
हम गूंज उठा करते अकड़े

सागर तट पर बालक से हम
हैं बना घरोंदे खेल रहे
उड़ जाये अपना घर न सदय
संहार लहर को झेल रहे

हम उतने जितने मानव के
हैं रोम नहीं, हैं केश नहीं

जितने पृथ्वी में अणु न अरे
जितने की गणना कहीं नहीं

हम एक एक कितने विराट
हैं फैले कितनी दूर दूर
मानव की मेधा पथिक बनी
हो जाती पथ में श्रांति चूर

हैं कोटि कोटि
हैं अरब अरब
अपनी किरणें हैं
खरब खरब

अपनी गति में है नील नील
अपनी भ्रमात्म सुधि शंख शंख

हम एक दूसरे को अपनी
किरणों से दुलराते सहास
कितने रहस्य के गर्भ बने
करते रहते हैं महालास

शनि का अणु—ध्रुव अणु से अपना
संबंध लिये जैसे जीवन
से मिला हुआ सोता सपना

हम सत्ता नद के फेन सरल
हम सृष्टिमूल के अगन कमल
नीरव इंगित से सबको छल
अँधियाले में दिखते सबको—
ज्यों बिदा समय पर गालों पर
बह बह आते हैं अश्रु तरल

हम नियम सदृश हैं इठलाते
मानव हमको लख कर गाते
हम अपनी किरणें भेज रहे—
तुम नयन-किरण के दूत बना
अपनी उर आकांक्षा उस पर
मृदु गन्ध बना कर भेजो मनु

पृथ्वी हुलसित
रवि भी प्रमुदित
हम भी हर्षित

सब कर नर्त्तन
पग परिवर्त्तन
गति का नर्त्तन
पग छूम छनन

आनंद अमर
प्रत्यावर्त्तन
करलें रहस्यमय
चिर नर्त्तन !

सर्ग—३

आख्यान :

मेधावी ने देखा सृष्टि—संपूर्ण सत्ता अपना महानृत्य कर रही थी—

'सत्ता नर्त्तन'

आ रहा यह सारा आकाश
आज मेरे नयनों के बीच
अगम विस्तार अपार विराट
हो गया अंतर्छवि का गीत

आह कैसा है यह उन्माद
काँपता है क्यों जीवन आज
एक क्षण की विस्मृति में लीन
युगांतर की आ छाई लाज

अभी तक गूंज रही झंकार
प्रतिध्वनि करती सी गुंजार
आज मेरे प्राणों की ज्योति
बन गई अंतराल सी स्फार

देखता अणु अणु नर्त्तन मग्न
सभी की परिधि सभी का केन्द्र

टूटना जुड़ना भ्रमण अपार
और फिर दब कर उठता भार

आह यह नक्षत्रों का गीत
भूमि का बनता है परिधान
अरे मंगलमय तम का भार
ज्योति की पृष्ठ भूमि जयमान

नहीं होती यदि जग में रात
नहीं दिखता तारों का जाल
अल्प रवि की किरणों में बद्ध
न बढ़ पाता आगे चिरकाल

वासना का यह मीठा स्वप्न
फूल शूलों से यह नक्षत्र
भूत के अपनेपन का श्वास
छा रहा है कैसा सर्वत्र ?

आह रजनी के अंचल मौन
आज मैं करलूं तुमको प्यार
अरे क्या देखा मैंने दूर
हो गया जो सब कुछ ही पास

निविड़ तम के व्याकुल शृङ्गार
अरे स्तर स्तर रहस्य के भार
किंतु क्यों मैं अपराजित दीप्त
देखता भ्रमित पथिक निर्बाध

बोल तो कितना है यह शून्य
असीमित भी सीमित है आज
दूर का बन संगीत अमोल
छा गया कानों में, चिर लास

एक अज्ञात, सभी अज्ञात
किंतु फिर भी मानव की खोज
ज्ञान चिन्हों से सब को आँक
बढ़ रही है अविराम अछोर

अरे क्या है मानव का ज्ञान
वस्तु के रूप, रूप की वस्तु
इन्हीं का परिचय अंतर्द्वन्द्व
और बनता जाता है गान

अचानक यह कैसी द्युति लीक
अरे टूटा तारा वह दूर
ग्रहों की भ्रमणशक्ति में घूम
हो गया अंतराल में चूर

सोचता हूँ मैं फिर चुपचाप
एक दिन क्या यह धरणि अमोल
सूर्य्य की गति में खोकर लाज
चूर हो जायेगी कर रोल !

एक दिन रवि हो शीतः प्राय
ऊष्ण आलिंगन देगा छोड़
और फिर अंधशून्य में लुप्त
भूमि खोयेगी कंपित घोर !

कांपता है मेरा उन्माद
मोह से घिर आता आकाश
और उस महाशून्य से स्फीत
मचलता रह रह अट्टाहास

प्रलय की बेला की वह याद

धमनियों में ज्वाला सी व्याप्त
शून्य में भूत ज्योति सा लीन,—
यही करता रह रह आघात ?

अरे अरबों वर्षों का भूत
आज मुझ में करता कल्लोल
भूत की गति का बदला रूप—
गुणात्मक परिवर्त्तन का लोल

अरे तारों का देखा नृत्य
सृष्टि का अणु अणु नर्त्तन लीन
आह सत्ता का चिर हिंदोल
स्वयंगति में चिर मुग्ध नवीन।

अखिल रूप चल
यौवन छल छल
हट हट फिर मिल जोर
ओ जीवन
कण कण कम्पन
अणु अणु सिहरन
नाचे सत्ता नारी
ओ जीवन

सुख दुःख खेलें
लहरें फैलें
धूप छाँह की आँखमिचौली
पुलकित मंथर जीवन

एक सिंधु जो गहन गभीर

जिसमें है लहरों की भीर
चल दुकूल सा आज अधीर

ओ चिर जीवन
री चिर यौवन
सखि चिर कंपन
भर भर ला
लहरों में रस भर भर ला

श्वास नाच लें
प्राण बांध लें
नयन कांप लें
आतुर ला
अधरों में मधु भर भर ला

टीसें थिरथिर
लज्जा तिर तिर
तृष्णा घिर घिर
उर सहला
चिर आलिंगन लय सुर ला

तरल सखि झूमी
मदिर मधु घूमी
किलक हँस गूंजी
रे नाचे सत्ता नारी
रे नाचे सत्ता नारी

रे तंतु तंतु पुलके
निमीलिताक्ष खुलते
अधर खुल सुलगे

रे नाचे सत्ता नारी
रे नाचे सत्ता नारी

मिलित द्रुम द्रुम रे
हहर स्वर खेले
सुपुष्प पल्लवों में
सुरभि मधु फैले

कलित कल बहतीं
लहरियाँ पागल
निविड़ तम गूंजे
प्रकाश चिर आकुल

रे नाचे जीवन सारा
पृथ्वी पर नाचें प्राणी
ज्यों सिंधु अपरिमित मानी
अस्तित्व मोह धारा में
बहते ग्रह उपग्रह तारा

यह मुक्त वनस्पति तंद्रिल
नभ में छायाएं स्वप्निल
जीवन समूह में रहने
रे आज व्यक्ति दृढ़ कारा

अणु अणु में छवि का सागर
निस्सीम निरंतर झर झर
द्रुत गति से पथ धावन में
प्रति पल क्षण सुंदर प्यारा

ज्योति जगे पल
तिमिर ढँके चल
आँख खोल कर
बंद बंद कर
नूपुर ध्वनि में तन्मय

जीवन छितरा
मृत्यु लहर का फेन बना सखि
सत्ता सागर तट पर,
सुख दुख के दो हृदय प्रकाशक
अस्ति नृत्य में लयमय

छन छन आती मुग्ध धूप में
जैसे अगणित कण अणु खेले
एक लहर में घिर जीवन की
सृष्टि अखिल यह खेलें

तेरी आँखों में अमिय गरल
जैसे हिम गिरि में अंध भयद
काली छाया बहती अविरल
पुतली में जैसे हो तारा
इस सघन मृत्यु में लघु जीवन
पर उसमें ही चेतना अखिल
गंधालस कर उठती गुंजन

ताना बाना सा बुना हुआ
जीवन मरण का अणु अणु में—
मकड़ी सा स्वयं उगल जाला
उसमें ही अपना नृत्य किये

अणु अणु से संचित शक्ति कि
गति में होता है मतवाला

यह अहंकार की स्वप्न प्रभा
जिसमें यह जग है रंगभूमि
यह कर्म स्वयं निर्माण बने
वृक्षों से उठते हहर झूम

यह प्रकृति श्वास में आंधी दे
आलिंगन में दे जल प्लावन
मधु स्नेह स्फूर्ति में हिम बरसा
करती रहती सब पर शासन

गर्वोन्नत शीश उठा मानव
कर कर उठता गर्जन महान
में संघर्षण की चिंनगी हूँ
अपराजित जीवन का सुगान

सत्ता नर्त्तन

उलझे डोरों का छोर बना
ले जन्म और प्राणी प्रभूत
चींटी सा चलकर सामाजिक
उस एक मृत्यु-बिल में विलीन

अनुभूत सृजन

पल पल की लघु लघु लहरी में
ध्वनि सुन पड़ती क्या गहरी हैं
चेतना हृदय में बिखरी है

सुख दुख की अलकें उलझी हैं
चिर प्रगति कग्गन

इस एक बीज में छिपी हुई
शाखाओं की विस्तृति अपार
इस एक विसुध अणु में मुखरित
ग्रह उपग्रह का गुंजित प्रसार
कितने कारण से एक कार्य्य
कितना विरोध कितना मिलना
परिमाण और गुण में बदला
यह रूप अथक केवल चलना
क्रम क्रम चलना फिर तीव्र वेग
गति में उछाल रे परिवर्त्तन
जीवन मारण की चक्रित विधि
में बदल उमड़ प्रत्यावर्त्तन
जैसे संध्या में दिवस ज्योति
तम में जाती है शनैः डूब
रजनी रो लेती, नभ रोता
पर नवल भोर होती प्रसूत
मिलते अणु चेतन जीवन बन
बिखराती मृत्यु सुनिर्विकार
अणु फिर मिलते चल परंपरा
ज्यों अक्षय विलसित यह खुमार
जड़ के पगचिह्नों पर चेतन
है नृत्त कर रहा पुलक आज
यह स्पंदन ज्यों पगली आँखों
में कभी न मिटने का दुलार

हैं कीट कीट चलते दुस्तर
अनुवीक्षण को भी जो अदृश्य
गर्वोन्नत मानव चलता है
नद गिरि संचय वितरण विभाग
के शक्ति केन्द्र—, देते पल पल
जुड़ जुड़ जाते, जय जय विकास,
कितना विराट यह भूचालन
सीमा कल्पना पार निर्गम
सत्ता नारी के दो उरोज
परिवर्त्तन
मृत्यु—

दुग्ध पीकर

उनका चलता जीवन महान
चिर बोधिसत्व की ज्योति विशद
फैला करुणा का अमल गान

वासना अलस उन्मत्त बनी
उद्रेकित करती आज प्यास
आलिंगन की मृदु ऊष्मा में
ये शब्द कर रहे श्वास श्वास

नख दमके बन कर तारागण
स्वर्गंगा केशों का सुहाग
श्रमजीवी से ग्रह उपग्रह घर
को लौट रहे गा गा विहाग

ताराओं से ज्यों ज्योति निसृत
चलती झटकों की दोला पर

तेरा स्पंदन या स्पर्शों से
भरता सुगर्भ का सुख दूभर
जैसे उत्तर ध्रुव में निशिदिन
हैं अर्द्ध वर्ष के दीर्घ मधुर
तू नयन खोलकर बंद करे
क्रम क्रम खिल मिलते ज्योति तिमिर

तेरी मेखल में महा सूर्य्य
बन रत्न जड़े हैं रहे घूम
तेरा अंचल है महाशून्य
जिसमें ये गोलक रहे झूम

तेरी थिरकन है परिवर्त्तन
तेरा यौवन है चिर रहस्य
तेरी स्मित है विकास निर्भय
यह रूप अखिल है महासत्य

मानव की पृथ्वी इस विराट
आंदोलन की है झलक मात्र
द्वंद्व में सम औ' विषम बने
उपलों में जर्जर ज्यों प्रवाह

चेतना महान उमड़ती सी
विज्ञान-आज बन शिशु अवाक
इन अगणित रूपों का स्वरूप
ढूंढता—प्राण का बना नाद

रजनी अंचल पर तारागण
ऐसा तेरा री अवगुंठन
ले झलक दिखा अपनी क्षण भर

लय तालों पर नर्त्तित अणु अणु

सत्ता नारी कर चिर नर्त्तन

घर घर कर चलते ग्रह उपग्रह
आकर्षण में चंचल बनते
तारों की गूंज सलज सुंदर
कोमल नूपुर की रुनन झुनन

सत्ता नारी कर चिर नर्त्तन

यौवन की मादक लहर विभा
लहरों सी सीमाहीन अमर
प्राणों के आवाहन सी पर
ओ अंतर्लय की द्वन्द्व चलन

अविराम सृजन की आवर्त्तन
तू मृत्यु चला की चिर प्रतिध्वनि

सत्ता नारी कर चिरनर्त्तन !!

सर्ग—४

आख्यान :

मूल तत्त्व ! कौन ?
हँस उठा वह परिवर्त्तन
और उठ गया उसका
वह चरण
द्रिम द्रिम···

'परिवर्त्तन नृत्य'

अरे अरबों वर्षों से सृष्टि
नाचती ऐसे ही अविराम,
आह यह मानव का अभिमान,
गिर गये शून्य कल्पना पंख,
लुब्ध होकर अपने ही स्वार्थ—
जाल में लय होता है भार !
अरे सब कुछ 'मैं हूँ' का दंभ
किंतु अधिकारी का वह दीप्त
राज्य सिंहासन था अज्ञान
आज वह चूर चूर हो मौन
भर रहा है व्याकुल संताप !

पूछता है यह क्यों है बोल
कहाँ से है, कब तक है बोल
किंतु केवल संकुचित अधीर
निराशा के तांडव में ध्वस्त;
आह परिवर्त्तन का यह सत्य
उसी से करता है संघर्ष ?
अमरता का पागल अभिमान !

किंतु वे दर्शन के जय वाक्य
एक दिन बने धधकती आग
भूमि को भस्मसात विध्वस्त
बनाने की जो करते चाह
शून्य में करते हाहाकार
आज परिणाम रूप में भग्न;
उसी की वह अशक्ति अभिभूत
घेर कर करती वज्र प्रहार
और व्याकुल होकर उद्भ्रांत
स्वयं-निर्मापित-ईश्वर-भाव
रूप की छलना की घनघोर
विभीषण छाया में पथ भूल
तिमिर के गहरे स्तर तल हाय
दबा करता है हाहाकार

अभागे ! तारों का क्या अर्थ
हमारे जीवन से यह बोल !
अनेकों नक्षत्रों के फूल
उड़ाती जो विशून्य की वायु
परिधि सीमा का क्या है केन्द्र ?

मूर्ख ! पृथ्वी विकास है अल्प
आधुनिकतम सत्ता का रूप
इन्हीं से डर कर हो अभिभूत
मनुज ने की ईश्वर की सृष्टि,
काल्पनिक भावों की ले डोर
फांसता था जीवन का सत्य ?
रो दिया लो कठोर भी आज
हँस दिया अरे हँसा फिर कौन ?
किंतु वह महाज्ञान का सिंधु !
अरे रह रह उठतीं हिल्लोल
कभी भी हो न सकीं चुप शांत
हृदय की शांति—हो गई केन्द्र
जहाँ दोनों ही के एकत्व
और सापेक्ष महागति लास
गा उठे-क्योंकि दुखी था विश्व !

अरे क्या मानव निर्बल सत्य
किंतु नक्षत्रों में जो आज
देखता है वह भूत प्रसार
ज्ञान है ज्ञान, ज्ञान विज्ञान,
एक व्यक्तित्व खो गया आज
पूर्ण व्यक्तित्व विश्व के बीच,
बूंद गिन गिन कर तू मत हार
बन गया जिससे सागर आज,
थपेड़े मार रहा है ज्ञान,—
भाफ से जिसकी सिंचते खेत
ज्ञान का सामंजस्य अपार

सांत्वना जीवन की अनमोल
रागिणी पर गायक का कंठ
काँप उठता है रह रह सांद्र;

व्यथा का सागर अपनी आँख
खोल कर देख रहा है मौन—
रहस्यों का आकाश अपार,
प्राण की यह कोमलता प्यास
बन गई पुतली का ही मोह······
आह मेरे नयनों की ज्योति
सृष्टि की शिरा शिरा में व्याप्त
आह मानव के दुःख !
अरे संबंधों से उद्भूत
अल्पता की वह प्रबल अशांति

बदलते रहते हैं जो चित्र
एक गति का ही निर्मल सूत्र
पो रहा है क्षण क्षण के फूल
गंध की मादकता से स्फीत
हर्ष की मधु दोला में भूल !

अरे दो ही हैं शाश्वत सत्य—
एक सत्ता का अविरत खेल
दूसरा परिवर्त्तन का नृत्य
उसी की महारोर में मग्न
बही जाती है सृष्टि अबाध

सृष्टि का यह इतिहास—
देख, मत हो विस्मय से मौन

पूछ मत गति की लय में लीन
अरे तेरा निर्माता कौन ?
कौन किसका निर्माता बोल !
सभी तो गति की चिर स्वच्छंद
प्रबल धारा का सुंदर रूप
अस्ति है स्वयं अस्ति का केन्द्र
नास्ति है केवल दृढ़ता शक्ति
ज्योति तम का यह अविरत खेल

आत्मलय औ' विकास का मेल
आज मैं हूँ अवाक या मग्न
आह कितना कितना उन्माद
बना गया है आनंद अपार

देखता भूमि और आकाश
एक ही बात रही है—एक
रहस्यों की वह प्रतिध्वनि आज
बन रही है परिवर्त्तन देख—

हे परिवर्त्तन
भीषण नर्त्तन
कर
नूपुरध्वनि में गूंज उठे
तूफ़ानी सागर का गर्जन

लहरों पर उच्छृंखल गिरि गिर
वज्रों से दहलादें उर को
रे मृत्यु दीर्घ छाया काली
डाले भरदे जीवन सुर को

तू पुलक अथक
क्षण क्षण
नूतन !
इस गति में सृष्टि विकास अमर
उस लय में हो संहार दुभर
थिन थिर नाचो
भय भर नाचो
रे उदय गगन में ज्योति खिले
निविडांधकार में सांझ बुझे
यह लक्ष लक्ष नभ ग्रह तारा
आलोड़न में खेलें द्युतिमय
अवसानहीन
रे आदि हीन
चिर गति में भ्रम भ्रम आत्मनिलय
ओ रे बसंत काकली मुग्ध
सूने पतझर के शोक रुद्ध
पगपग में रे अविरत विकास
कर नृत्त विशिख
कर रे तांडव
कर लास्य मधुर
ओ परिवर्त्तन सर्वात्मरूप
तेरा नर्त्तन जग का विकास
तेरे पग पग चालन में उठ
हैं क्रान्ति उमड़तीं बार बार
ओ ज्वालामुखि के विकट स्फोट
रजनी में जलती शिखा एक

यह नयन विघूर्णित चंचल तन
ओ निर्विकार ज्योतित विवेक

लहरों सा घुलमिल भंवर बना
सागर तू है रे गहन हृदय
जलधर तेरे कंपित नूपुर
फड़का दे होंठ अमर गतिमय

तेरे विराट उस रुद्र क्रोध
में भस्मभूत विध्वंस शेष
लय हो जावें यह गहन सृष्टि!

तू अंतराल का अट्टहास
तू वर्णहीन तू वर्णलास
तू पलपल के पुल पर चलता
है समय सिंधु कर रहा पार

अगनित स्वर्गंगा भानु अगन
तुझमें से फूटे से स्फुलिंग
तुझमें अगनित नाटक होते
तू महाशून्य का रंगमंच

ओ आदि चलित चेतन पदार्थ
अंतर्लय में जो ज्योतिमात्र
तू उसका अविरत भ्रमण तीव्र
रे फूट रहा वह अणु क्षण क्षण

उस एक दीप्त कन का प्रकाश
रे व्याप गया सब अंतराल
रे लक्ष लक्ष रे कोटि कोटि
उमड़े स्फुलिंग था नहीं पार

उन अगनित अणु की गति से जो
संगीत उठा उससे मोहित
तू नाच उठा--बेसुध तन्मय
नर्त्तित ही है विराट अब तक
अब, कल, ऋतु, अब्द, कल्प,
स्थिति, गति,
यह सब तेरे नूपुर के मणि
जिनके बजने से चलता है
लय ताल मदिर पर मृदु जीवन

नक्षत्रों का गुंजित सँगीत
इस अंतराल की वंशी में
तेरे श्वासों से भर फूटा
नव स्फूर्ति जगी है जीवन में
जैसे मादक छवि की तंद्रा
युग युग यौवन आकुल करती
इस नर्त्तन ध्वनि से व्याप व्याप
है पुलक रही क्षण क्षण धरती

पगधर नर्त्तित
नटराज मधुर
छाया चित्रों सी यह संसृति
बन जाय मिटे
मिट जाय बने
बालू की भीत उठे हँस हँस
लहरों से गिर जाये रो रो
निर्माण और विध्वंस चरण
है प्राप्तिभास जाये खो खो

ऊषा फूटी मृदु आभामयि
दिनकर नभ में खेता आया
संध्या का रंग विरंगी घन
रजनी के तम में विलमाया
यह पक्ष, मास, ऋतु, तेरे पग
का स्फुरण सतत
नर्त्तन अविरत

वन प्रांतर, शैल, गुहा, नदियाँ
द्यावा, मारुत, पर्जन्य, कुभू,
लहरें कोमल, मृदु तंतु तंतु,
है शिंशुमार से घूम रहे

जीवन का चंचल उजियाला
संहार छाय का अंधकार
तेरी गरिमा की धूपछाँह

रे चिर जीवन
हे अमर मरण
तू तो स्थिति का स्थिति में ही लय
संकोच और विस्तार अमित,
ओ भिन्न भूत के परिचालन—
जैसे चर्खे पर अगन तूल
का एक सूत्र उस एक स्थान
से बाहर खींचा कढ़े भूल

अविराम चेतना कात रही
घर घर घर का गुंजित निनाद

निस्सीम शून्य में फैल रहा
टकरा कर घोषित महानाद

अभिभूत प्राण
निर्बाध सहस्रों वर्षों के
स्तर स्तर को भेद निरंतर चल
इस ओर शांति उस ओर क्रांति
यों परंपरा उन्मुख अविकल

तू आयु चरम की दोला पर
निज मंद्र चरण गति झुला रहा !

शैशव के नयन बाल सरसिज
सम पंखुड़ियाँ खोलें विस्मित
अभिमानी यौवन अनदेखा
करता है तृष्णा को चकित
वार्द्धक्य झुका देता है गति
जर्जरता कर देती तंद्रित

तू एक चरण धर अन्य उठा
कर देता लय में अंतर्लय !

सूनेपन में कुछ क्षण क्षण चुप
रे सांय सांय सी बोल उठी
अविराम पुलकती लहरों में
यह कैसी नूतन रोल उठी

श्लथ श्वास निरंतर झर झर झर
नीरवता में मृदु मृदु मर्मर
है काल विहग उड़ता फर फर

उठ गई भृकुटि उठ गये महल
उगली कांपी उठ चली क्रांति
फूत्कार कर उठे शोषित जन
हुंकार उठी–बिखरे खंडहर

द्रुत द्रिग द्रिग धिम
वह्न जल प्लावन
गर्जन
लो फूटा ज्वालामुखि

इंगित लावा नव उमड़ पड़ा
नवभूमि बनी, नव शस्य उठे
नव जलधर नभ में सांद्र ध्वनित

उन्मुक्त जन्म का द्वार किया
मिल गया राह में नव जीवन
कर पर धर जर्जर तन फूंका
लय में से निकला नव जीवन
यह जन्म चरण
यह मरण चरण
दोनों की गति में सृष्टि चली
आलोक तिमिर
नभ स्वच्छ कुहर
ओ चंचल क्षण
चिर परिवर्त्तन

उस एक रंध्र के प्राणी से
जो भिन्न भिन्न जीवों में चल
तू मेधा मानव के इस नव

ब्रह्माण्ड रूप में खेला कल
चलता ही तो जायेगा चिर
विश्रांतिहीन अनुपम चल चल

तेरे नर्त्तन से सृष्टि जरा
नव नव प्रकाश में चिर नवीन
तेरे चुंबन से जाग्रति में
है चिर सुषुप्ति का आदि लीन
तू अणु से फूट हुआ विराट
फिर भी विराट तू है अणु ही
तू चिर चेतन पदार्थ में है
व्यस्तता, क्षोभ, मिश्रण, विनाश
जो आदि शून्य
वह अंत शून्य
तू ही दोनों का एक सत्य
तू आत्मविकास अमर पुलकित
अंतर्बाहर का एक गत्य

फट गया बीज
फूटा अंकुर
उगने फैले कर
लघु कोंपल
बढ़ गया वृक्ष
छाया अविरल
पतझर आया
गिर गये पात
आया मधु
नवयौवन विलास

यों सृजन
और पालन संहार
सापेक्ष रूप से
बुद्ध बद्ध
पट पर पट
स्तर पर
स्तर अनंत
पग पर पग
रे गति पर नर्त्तन
हे परिवर्त्तन

तू लीकों पर चलता न किंतु
सामूहिक शक्ति प्रकृति नियमन
पर व्यक्तिरूप में अणु स्वतंत्र
स्वेच्छाचारी करता है रण
विद्युतप्रवाह सा ज्योतिर्मय
तू भूत लहर का द्वन्द्व भरण
रस का पथ ऋजु विस्तार अमित
तू हेतु, ज्ञान, अनुभूति बना
बस अस्ति रूप का संभावन
वह अस्ति—ज्योति तम है समान
यह अविरत मृदु विकास
आकर्षण
का वितान

अनुपम दुराव
परिधान सत्य
गति लास सत्य

यह शुद्ध परिष्कृति
और तमस
फिर उसी आदि में अंत लीन

जैसे नटराज चरण तेरा
है अंतराल में चक्र परिधि
दे दे कर लय पर भूल रहा
ओ पल नवीन
क्षण पुराचीन

चट्टानों में हैं लिखे हुऐ
तेरे प्रमाद के अगन चित्र
अपने आगे के चरण उठा
यह जीव देखता वरुण मित्र
तू मुक्ति स्पंदनों का प्रवाह
तू महाजागरण का लौकिक[1]
जीवन मारण का महानाद
जय जय हे गति के आदि अंत
जय जय विकास
जय जय प्रकाश

विस्मित आंसू हैं उमड़ रहे
तेरी अविरत गति से व्याकुल
आलिंगन विरह रूप छलना
हैं सभी परिधि सम दौड़ हेर
जीवन के नील तमस में सुन
पड़ता है गति का मृदु मृदु स्वर
हैं भुजा उठीं विस्फारित दृग

[1]लौकिक: रागिणी जो अपनी धड़कन में एक पूर्णत्व लिये है।

केवल गंभीर रहस्य दुर्भर
अनजान गहन है अंधकार
जिसमें है खेला अहंकार
चल मैं तू का अविरत
घर्षण
हे परिवर्त्तन !

फूटी भीतर से दीप्त ज्योति
आनंद अपरिमित नाच उठा
तम के पर्दों को भेद भेद
बढ़ती ही फैली रे सवेग
अगणित स्वर्णिम कण खेल उठे
नव प्राण विजयनादी जागे
नव जीवन की गूंजी पुकार
नव स्फूर्ति मचलती थी आगे
यह है विकास
निर्झर प्रकाश
उन्नति का यौवन पथ अमंद
उल्लासदीप्त सुख है अभंग
मांसल जीवन
सुंदर जीवन
यह नई भोर की नूतनता
चिर सृजन रूप की चेतनता
प्राचीनों में से बदल बदल
नव रूप धरण की आतुरता
संगीत उमड़ आया नवीन
सागर में गूंज उठा मृदंग

भीँगा समीर वीणा बन कर
चल पड़ा झनझनाता अमंद

आनंद अरे कानन झूमे
आनंद अरे तारे घूमे
उस तिमिर गर्भ से निकल निकल
सब ही पुलकित से नाच उठे
शीतलता व्यापी शिरा शिरा
थे रोम रोम से गान उठे
ऊषा अपने तन को स्वर्णिम
वस्त्रों से ढँक आई चंचल
संध्या के मेघ पयोधर को
रवि कर ने सहलाया विह्वल

मानव मानवी पुकार उठे
मृग मृगी चकित देखते रहे
प्राणी के अगणित रूपों में
सानंद जलद द्रिम गूंज उठे

निर्माण प्रकृति ने किया पुलक
निर्माण प्रकृति के कण मानव
ने किया सहर्ष सलज सुंदर
दोनों में अंतर्द्वन्द्व चला
गति खेल उठी फिर बढ़ने की

फिर सूर्य्य और ग्रह तारा घन
नभ में रे दौड़ चले अबाध
नदियां सागर की ओर चलीं
सागर बादल में शुद्ध हुए

बादल शैलों पर टकराये
मैदान मेंह से मत्त हुए

मानव ने पृथ्वी का लोहा
पृथ्वी में मारा, धरणी ने
सोना उगला, यह अन्न उगा
निर्माण हुआ
निर्माण हुआ
जयगीत यही गुंजार हुआ
गति आगे भी बढ़ती जाती
गति चक्र परिधि में भी खेली
गति में आलोड़न आकर्षण
गति शक्ति नाश बल का संचय
संतुलन अमर सी सृष्टि नची
हँस पड़ी पुलक
रो पड़ी सुलग

गति महानाद, गति ईमन ध्वनि
गति काल भयद, गति है जीवन
है कभी फूट कर सृष्टि बनी
इतनी गभीर इतनी विराट
फिर कभी शक्ति अंतर्लय कर
अपनी सीमा में लघु लौटी
यह अंतराल में है रहस्य
हर विंदु सृष्टि का स्वयं सत्य

गति माया है गति उलझन है
गति भीरु हृदय को जाला है

गति के अणु को, लय के स्वर को
गति जीवन है, उजियाला है

फिर अणुओं की यात्रा अनंत में
क्षीण हुए कुछ नष्ट हुए
हलचल पदार्थ में हुई तनिक
हो गया ध्वंस अणु भ्रष्ट हुए
रे उठा प्रलय तत्त्वों में ही
आंदोलन सा उमड़ा सभार
संहार सृजन के स्पंदन में
तू बद्ध नहीं है हे अपार

संहार सृजन, गति औ' विकास
रे शक्ति सत्य, सुख दुख विलास,
तम औ' प्रकाश, रे आदि अंत,
ओ बद्ध कक्ष, व्यापित दिगंत,
अविरत पदार्थ के अस्ति रूप
तू ज्योतिरूप, तू शक्ति रूप !
कितना विराट सा है रहस्य
सुनते हैं हम बस क्षीण गीत
जिसकी वास्तवता से अगनित
तारा नभ में रे चलित स्फीत

वह क्या होगा ? कल्पना पार !!
लाखों सागर मिल गरज उठें
कड़के सारे नभ में बिजली
सब ज्वालामुखि विस्फोट करें
मानव की बुद्धि पुकार उठे—

फिर यह भी उसकी क्षीण झलक
आकार रूप, चेतना रूप
नाचो अविराम निरंतर खिल
जैसे धरणी इस सौरचक्र में
सूर्य्य ज्योति में नृत्य निरत
नाचो नाचो
हे परिवर्त्तन !

जैसे सुहागिनी की पलकों में
पलता प्रियतम का दुलार
अस्तित्त्व और कल्पना चित्र
पर ताना बाना खींच खींच
तू थिरक रहा रे बार बार

ओ चिर छाया
ओ दीर्घ वृत्त दुर बीज अंक
में दिखला दे अपनी माया
इंगित से 'हाँ' करदे चंचल
भावों से 'ना' करदे व्याकुल

तू झूम चले
तू मत्त चले
रे नृत्य करो
हे परिवर्त्तन

चढ़ता उतरा, रोता हँसता
तू छूट छूट घिरता तिरता
ओ मुक्त पुनर्निर्माण अमर
हे परिवर्त्तन

कर नृत्य नृत्य
यह सृष्टिचक्र है घूम रहा
तेरा तेजस बन झूम रहा
तू नाच रहा मेरे भीतर
बाहर भी तेरा ही रहस्य
कर अमर नृत्य
तेरी हलचल तेरी छाया
उस ज्योतिपुंज पर चल काया
तू चिर अस्तित्व लहर सुंदर
कल्याण जलधि का नाद सत्य
कर नृत्य नृत्य
पग पग रे लास्य अभी मनहर
द्रुत चरण डुलन तांडव दूभर
यह समयांचल फहरा फहरा
रे महानुभूति स्वयं परिचय
कर विसुध नृत्य
हे परिवर्त्तन

विश्वसंघ एकत्व रूप कर
सुख से तेरे इस चल रथ पर
बहे मुक्त निज जीवन पथ पर
अपनी महाशक्ति से नियमन
में नवज्योति भरो परिवर्त्तन

अंधनयन को खोल हँसे क्षण
उस क्षण में युग युग आवर्त्तन
तू अपनी गति की सहचरि स्मृति
से पा स्फूर्ति अमर कर नर्त्तन
रह रह नर्त्तन, हे परिवर्त्तन

सर्ग—५

आख्यान :

मेधावी ने देखा—आकाश के बीच महाशून्य में धीरे धीरे सौर चक्र बनने लगा और पृथ्वी सूर्य्य को देख कर मुस्कुराने लगी—

शून्य और यह समय महत्तम
आदि अंत के प्राण रहे रे
महाशून्य में महा विलोड़न
करते ग्रह उपग्रह तारे रे

एक चक्र यह घूम रहा है
अणु अणु इसमें ज्योतित जीवित
अगणित तारा घूम रहे हैं
महाशून्य में जो निस्सीमित

वर्णहीन वह शब्दहीन वह
अणु परमाणु सतत संकोची
अंतराल रे चितवन की भी
गति से पतला मुक्त विभोरी

उसके महागर्भगृह में वह
गतिरहस्य गतिलय स्वयमागत
वह रहस्य भी भूत शक्ति गति
महाज्योति से भीतर जाग्रत

उसका सुंदर रूप हो गया
बन परमाणु सूक्ष्म, संसृति का

वह परमाणु भ्रमण करता जब
स्वर निकला उससे जाग्रति का
उस गति से वह फैल गया फिर
व्याप गया तब अंतराल रे
एक लहर सा एक वायु सा
एक हुआ कण सा सुकाल रे

महाशून्य में तारा जागे
जागा ग्रह उपग्रह का नर्त्तन
महाघोष वह ग्रह रंध्रों से
निकल निकल गूंजा बंशीस्वन

यह संसृति सापेक्ष मधुरिमा
बन माध्यम सी लगी डोलने
एक खेल जो धीरे धीरे
बन गँभीर हो लगा सोचने

है विराट परिरंभन कितना
भ्रमित पंथ पर स्वयं विकंपन
महाशून्य के अंधतमस में
एक ज्योति का चिर विद्युत स्वन

ये प्रकाश के स्निग्ध ज्योतिमय
लघु परमाणु प्राण के दीपक !
एक अंड था दीप्त प्रकाशित
घूम रहा था भीषण गति रे
उसके अणु अणु बिखर गये रे
आज घूमते अगन चक्र से

रे विराट अगनित सागर स्वन
तांडव का सा स्फुरण विकंपन

लयलय में नूपुर ध्वनि गुंजित
इनका चिर अविराम भ्रमण बन
मृदु मृदु मर्मर महाघोष बन
डमरु निनाद बना दिशि दिशि में
आह विजन के टीस गीत सा
घूम रहा दिन दिन निशि निशि में

कितने अणु जल बुझ जाते हैं
नूतन उठ आते हैं क्षण में
यह तारामंडल का जीवन
पलक उठा गिरने के भ्रम में

यह विराट है चक्र अपरिमित
इसका हर अणु चेतन प्राणी
स्थूल रूप छनछन परिमार्जित
अग्नि शिखा सुख केतन प्राणी

अग्निरूप सा सूर्य्य धधकता
घूम रहा था अंतराल में
एक बटोही तारा चलता
आया पथ के महाजाल में

आकर्षण से रवि के तन से
खिंचा लीक सा भूत मचल कर
गति की उलझन में वह टूटा
लगा घूमने भिन्न नाद कर

अरे सूर्य्य अविराम धधकता
बना प्रजापति शासन करता

रूप बदल कर वे ग्रह उपग्रह
घूम रहे थे चक्र थहरता

किंतु रूप का सतत समन्वय
बना आत्मनिर्णय ग्रह ग्रह का
समय और विस्तार अपरिमित
परिवर्त्तन का सुख रह रह था

सलज धरणि के महागर्भ से
जात हुआ शशि कोमल सुंदर
नील केशमय स्वर्णिम सा मुख
आंख मिचौली सी कर आतुर

सौर चक्र यह अल्प वलय सा
अपनी ही झंकृति में मोहित
सत्ता नारी के शरीर पर
करता अपने को उद्घोषित...

अंतराल का गीत :

तारों के उस विजन मनस में
संसृति का निर्माण
वह भी महाशक्ति से भ्रम भ्रम
भरते मुझमें गान

देख रहा हूँ नर्त्तन अविरत
और सूर्य्य का लास
आज बन गया इन शिशुओं का
मंद किलकता हास

अरे समय के दुस्तर बीहड़
पथ पर झंझा-स्फीत

बहा रही है काल काल कर
गुंजित मेरा गीत
लगे घूमने सब ही रह रह
धरणि बदलती रूप
वह यौवन की ऊष्मा रह रह
शांत हो रही मूक

लो वह भाफ पिघलती जाती
धरती जल का रूप
जल की जड़ता भूमि गई बन
हलचल उठती कूक

और सूर्य्य के स्पर्श मनोहर
नारी उर में आज
धधकाते हैं ज्वालामुखि से
व्याकुल उठते श्वास

मां की ममता से वह चंदा
रोता है दिन रात
आग धधकती उर में उसके
भस्म बिखरती आज

सूर्य्य पिता ज्योतित करता है
ज्योतित होता दीप्त
प्रतिबिंबों से मां को छूता
देता स्पंदन शीत

और ग्रहण करने की तृष्णा
बढ़ती है दिन रात

मां के बिंबों से अलसाया
कभी खेलता प्रात
मां के महाकंठ में अपनी
भुजा डाल कर दूर
उधर बृहस्पति-चंद्र नाचते
रह रह उठते गूंज

वसुंधरा के जिन अंशों से
हटता रवि का स्पर्श
वहीं निराशा का तम छाता
सूनेपन का घर्ष

कभी उझक कर मुख दिखलाता
कभी छिपाता खेल
यह शिशु सा शशि कोमल गतिमय
करता चलता मेल

गति का लास:

भू रवि के फेरे देती है
चंद्र धरणि से आकर्षित रे
प्राणी का अबाध विस्मय बन
घूम रहा उच्छल प्रसार रे

वसुंधरा की स्फूर्ति मचलती
आज गर्भ के बाद जननि यह
स्नान किये निर्मल सी बैठी
लाज कर रही कोमल रह रह

नव शृंगार किये कल्याणी,
भूधर से उरोज पर हिम का

जैसे चंदन लेप किये वह
पट पहने नीलम कानन का
सागर का अंचल लहराता
लास नृत्य है चंचल करती
और चंद्र के महास्नेह से
प्यार भरी रागिणि सी हँसती

आह मातृ ममता की धारा
नदियाँ बन कर बहती जातीं
और आंतरिक सुमन शांति की
पंखुरियां हैं खिलती जातीं

सत्ता नारी कोमल कर से
पुत्रबधू को दुलराती है
जो अपने विद्रोही पति को
देख देख कर मुस्काती है

सर्ग—६

आख्यान :

धीरे धीर पृथ्वी पर भूत का स्पंदन हो उठा और जीव चलने लगा ——

'भूत का स्पंदन'

यह प्राण चिह्न गति शक्ति अमित
अंतर्लय छवि में गये डूब
शत शत सागर की रोर उठी
वह उमड़ चली यह प्रकृति फूट

यह प्रकृति फूट बन चली वायु
फिर करुणा की आई हिलोर
यह रज जीवन का वपुष बनी
प्राणी खुमार का सा मरोर

थे अगन सूर्य्य, था शून्य विजन
सीमित निस्सीम रहा विदिशा
तारा मंडल वे बद्ध परस्पर
चक्र चलित थे दिशा दिशा

फिर अंधकार फैला विराट
रवि किरणें जिसमें गई उलझ
उस रुद्ध हृदय के नीचे ज्यों
चल पड़ी प्राणमय वायु सलज

वह प्राण वायु जिसमें बादल
थे तैर रहे थे रहे भूल
नियमन का संचय जीवन रस
था भटक रहा रे रहा भूल

नीचे धरणी थी गर्भगृह
में लिये हुए चिर जीवन सुख
भूधर विशाल, नद रे विराट
सागर सब चिर गति में उन्मुख

ऊंघती रहीं चट्टान मूक
निष्प्राण पड़ी थीं युगयुगांत
सिर पर से अगनित रे करोड़
बह गया रात दिन चक्र भ्रांत

जल में आया मृदु मृदु कंपन
रे जीवन का हो उठा घोष
स्वप्नों से पाषाणी जागी
जीवन जीवन का हुआ तोष

मिल गई नाड़ियां—जलवायू
पृथ्वी में आई महाक्रान्ति
भूचालों तूफ़ानों का रव
बज उठा और हो गई शांति

जागे सिवार फिर जाग उठा
रे जीव —गुणात्मक परिवर्त्तन
दो मिले बदल परिमाण सतत
नूतन बन करते थे नर्त्तन

जलचर, थलचर, नभचर आये
क्रम क्रम विकास रे हुआ सुमन

ज्यों महाप्राण की चिर विराट
छवि में आया था लघु स्पंदन

वह स्थूल उठा छविमय स्वरूप
चेतन की दृष्टि जगी दृग में
चेतन का जीवन खेल उठा
हर तंतु तंतु के अगजग में

हर समय घूमता था वह अणु
परमाणु व्यक्ति के सभी ओर
चेतन में विद्युत गति आई
तूफ़ानों में वह रे विभोर

नयनों का एक पथिक भूला
चल पड़ा राह पर अहर्निशा
चेतन ने अणु अणु का क्षण भर
सीमित जीवन देखा, विमुग्धा

विद्युत से भर दी बना आग
वैभव साम्राज्य बना डाले
यह समय क्षणिक दुलराता था
फिर इंगित से ठुकरा डाले

रे जन्म मरण दो रहे सत्य
अंतर्विकास औ' अंतर्लय
रे बद्ध परस्पर चित्र रहे
वह अंधतमस औ' ज्योतिर्मय

परिवर्त्तन प्राण बना अरूप
वह तंतु तंतु में रहा व्याप
सुख दुख की लघु भावना जगी
जागा रे प्यार, मधुर विराग

वे बीज वृत्त थे स्वयमागत
पृथ्वी पर बीज गिरा तरु से
उपजा रे अन्न और वह ही
संकलति प्राण की शक्ति भरे

जागी प्रकाश की स्वर्ण किरण
झर उठे मेघ रस व्याप्त हुआ
हर शब्द मुक्त में जीवन भी
अपने भीतर ही आप्त हुआ

दिन था जिसकी संध्या भी थी
रजनी थी उसके पग पीछे
ऊपर अगाध आकाश अगम
धरणी थी घूम रही नीचे

उसने देखा तम और ज्योति
थे बुनते दिन रातों के पट
दिन दिन थे मास बने बारह
थे चले किंतु अविराम अथक

वह समय एक था वृत्त और
था गति का पवन उसे घेरे
मृदु मृदु हिलकोरों से बढ़ता
जाता था पथ अनदेखे रे

युग युग की शाखाएं निकलीं
उग, झरे वर्ष के पल्लव हिल
नस नस ऋतु बन कर रँग बदलीं
हिलकोरों में दिन रात विकल

वह समय आदि अवसान हुआ
वह ही प्रकाश वह अंधकार

यह जन्म मरण जीवन पथ की
मंजिल से चलते बार बार

हरियाली स्पंदित थी मरकत
सी जगमग डोल रही प्रशांत
अपने गर्जन में महासिंधु
मर्मर का घोष करे नितांत

उस सागर में वह नदी नील
करती थी महा विसर्जन सा
'डेल्टा' की उपजाऊ पृथ्वी
युग युग धारा में क्षण भर था

बादल फटते जाते थे नभ
में करके स्वर्णिम मृदुल हास
वह झूम झूम चलता समीर
चल चित्र एक रंगीन भास

व्याकुल सी सागर की मरोर
उन्मन था शैलों का खुमार
पागल स्मृतियों की धारा थी
या स्वप्नों का बेसुध दुलार

वह पृथ्वी थी गर्भगृह में
रचना का लेकर चिर रहस्य
परमाणु उसी में रहा घूम
यह गति ही केवल एक सत्य

अग्नि :

हिरण्यगर्भा सुलग उठी हूँ
आह सूर्य्य की भीषण प्रतिध्वनि
करती तंतु तंतु में गर्जन
अंधकार में किलक उठी हूँ
स्वर्ण मेघ सी
अंध वेग सी
मैं अणु अणु में पुलक उठी हूँ

वायु :

मैं कोमल स्पंदन सी व्याकुल
यह महाशून्य गुंजित करती
धरणी पर नर्त्तन सी करती
अणु अणु को मैं निश्वासों से
जीवन कंपन देती चंचल,
मर्मर कर उठते वृक्ष सिहर
गूंजा करते हैं शैल विधुर
रह रह कर हँस उठते सागर
मैं प्रहरी बन घूमा करती
झंकार भरी सी मुक्त मचल

जल :

अतल गँभीर
चंचल नीर
व्यापित अणु अणु शिरा शिरा में
नर्त्तित पगध्वनि
मंजु क्वणनमय

घोर गहन चिर
भय गर्जन मय
व्याकुल नीर !
लहरों के तारों पर द्रुतगति
पवन उंगलियां
चलतीं
उठतीं
गुंजित झंकृति
शैल शीश से निर्झर झर झर
घोष उठाता अमर निनादित
आवर्त्तन में तिमिर विलोड़ित
सलिल तरल मृदु मदिर प्रसाधित
सूर्य्य रश्मि के यान चढ़े तुम
पवन प्रताड़ित जलधर द्रिम द्रिम
भयद गरज कर विद्युत लरजे
बरसो
बरसो
नदी नदी के उर में गाते
सागर में रह रह मिल जाते
शुद्ध ज्योति के निर्मल वाचक
आदि चेतना
अतल गभीर
चंचल नीर

धरणी :

आह प्राण के कंपन !
फूट रही हैं अगनित किरणें

करतीं रह रह गुंजन
मेरे श्वासों में चिर जीवन
हिंदोलित भर सिहरन
सलज हृदय के कंपन !

समय :

नारी ! जीवन की गभीरता
आज सफल प्रस्फोटित
देख ! हो रही सृष्टि प्राण की
बहती जैसे बोहित

अंतराल का मंगल गीत :

भूमि के वक्षस्थल पर देख
चल रहे अगन रूप के जंतु
प्रकृति के दास
और घर्षण से होते नष्ट
वृद्धि औ' केवल धर अस्तित्व
घूमते हैं केवल अनजान
नहीं चिंता की कोई रेख
नहीं है सुख-दुख का आभास
किंतु केवल स्पंदन का ज्ञान...
बीतते हैं ले लाखों वर्ष
शैल बनते जाते मैदान
बन गई उपत्यका मरुभूमि,
बर्फ़ की चादर से मुँह खोल
झांकती है पृथ्वी अनमोल,
देखता हूँ मैं यह संभार··

जंतु का बदल रहा आकार
अनेकों रूपों का यह भूत
नई गति का धरता है लास
क्षीण हो जाता है जब रूप
तत्व का रूप बदलता हार
और वह भूत भ्रमण कर तीव्र
नये धर लेता रूप अपार...

कौन हँसता है आज गभीर
एक दिन इसी भूमि पर मुक्त
घूमते थे पशु दीर्घाकार
एक का अन्य रहा आहार,
और भूचालों में हो नष्ट
खो गये वे केवल अनबूझ...

एक दिन वनमें वारि समाप्त
देख, कुछ जंतु चले कर खोज
और वह दलदल में फँस हाय
खोगये जैसे उड़ती वायु...
आज उनकी पाकर वह अस्थि
मनुज का विस्मय मौन अबाक
किंतु अनगिन वह जन्म अपार
मरण में खोये रह रह मौन...

(गीत)

अल्प रंध्र वह सचल प्राण का
हुआ तरल लहरों पर दोलित
विकल ऊर्म्मियों के घर्षण में
करता था अपने को पोषित

गहन तिमिर में सिंधु तले वह
फैला पौधा बन युग युग में
जिसकी शाखा निकल निकल कर
झाँक उठीं निर्बंध पवन में

प्राणभूत यह तरल तरल सा
स्वयं विभाजित हो बढ़ता था
जिसकी गति का लास मछलियां
बन कर अब जल सा बहता था

धीरे धीरे नदियों की रज
अब उन पर जमती जाती थी
भूचालों के घोर विलोड़न
में ऊपर नीचे आती थी

और मत्स्य वह कालक्रमागति
शुष्क भूमि पर चढ़ती आती
घोर गहन कानन उठ आये
छाया से पृथ्वी ढँक जाती

अरे न जाने कितने वर्षों
सनसन वायु डोलती फिरती
सतत चेतना की निर्बाध गति
में नूतन स्पंदन सा भरती

केवल पत्तों की मर्मर थी
दीर्घ वृक्ष का मौन निमंत्रण
और शून्य निर्जन सत्ता पर
गगन श्वासमय भरता कंपन

युगयुग बीत गए अनजाने
और प्राण में कंपन आया
सरक सरक कर भूमि वक्ष पर
उसने अपना मार्ग बनाया

कुछ उड़ने लग गये गगन में
और लगे कुछ द्रुतगति चलने
मानों अपनेपन की ममता
सिखा रही थी चेतन सुपने

दिशाहीन औ' समय अचेतन
जो निर्लक्ष्य बहा युग युग तक
अरे वही अब व्यक्ति बना सा
लगा घूमने अलग अलग कर

केशराशि सी जो हरीतिमा
फैल गई थी रंध्र रंध्र पर
लगी दूर होने रह रह कर
कानन दबते थे मर्मर कर

वह अविराम जलद जो बरसे
सूर्य्य रश्मि से भिंद खोये थे
यह सागर मेरी पृथ्वी में
ज्यों दृग में आँसू ढोये थे

बीत गई अनगिन शताब्दियां
सुंदर फूल लगे फिर खिलने
उधर चरणमय जीव चल रहे
दीर्घ रूप में रह रह बढ़ने

अरे जीव यह प्रगति निरंतर
किये जारहा धीरे धीरे
तरु, भू , जल, नभ सब में व्यापा
चलता समयसिंधु के तीरे

पंखहीन वह थे निर्माणित
वायु संतरण में ज्ञाता थे
दीर्घ और लोलुप चलते वह
केवल गर्जन के धाता थे

हँसती थी यह धरती नीचे
मुस्काता था गगन अकेला
शून्यनाद का प्रबल विकंपन
सागर पर भर रहा थपेड़ा

इक्थियोसॉरस, मैग्लोसॉरस
ब्रॉन्टोसॉरस की दुनिया थी
उनकी थी यह सारी पृथ्वी
भोज्य बनी बाकी रचना थी

कभी देखते होंगे अपनी
तरु सी ग्रीवा ऊंची करके
और अल्प प्राणी गड्ढों में
छिप छिप जाते होंगे डरके

अरे किसे यह ध्यान रहा था
मैं भी एक दिवस होऊंगा!
'गति की सौरभ को' परिवर्त्तन
कहता 'बस मैं ही ढोऊंगा'

वह कठोर चर्मावृत प्राणी
दीर्घपक्षसम उंगली वाली
टैरोडैक्टिल की चिल्लाहट
सुन चिल्लाते होंगे मानी

वह भीषण पक्षी जब उड़ता-
उड़ता मांस चबा लेता था
अपनी लंबी पूंछ हिलाता
नभ में हलचल सी भरता था

किंतु नवोढ़ा पृथ्वी अपनी
तृष्णा पूरी कर न सकी थी
सूर्य्यकरों में स्पंदन सिहरी
अपने नर्त्तन में मचली थी

नई वासना के प्रकोप में
नूतन सा घर्षण होता था
जिसमें अनभ्यस्त इस रचना
का जीवन रह रह खोता था

आह एक दिन जो अपने की
रक्षा में रह रह लड़ते थे
आज अचानक ही कीड़ों से
शनैः शनैः रह रह मिटते थे

कौन कहे इस गति की छलना
कितने आ आ कर न मिटे हैं
अरे 'अहं' से मौन व्यथित हो
कालगुफा में विकल मिटे हैं

लहरों के मृदु आवर्तों में
तब भी गीत पवन भरता था
तारों की अभिभूतचलित द्युति
का प्रतिबिंब उमँग खिलता था

हीरक सर्प, करीसम कछुए,
डॉइनौसौर सभी खोते थे
काल निमेष मिटाता सबको
बर्फ़-प्रहार प्रबल होते थे

घोरशीत में ठिठुर गये सब ,
और आज वह अस्थि ढूंढ कर
अपराजित मानव की मेधा
किलक उठी है गूंज गूंज कर

रोमराजि से आवृत्त प्राणी
जो तब चूहों से निर्बल थे
बढ़ने लगे शनैः गतिमय से
शक्तिधरण आतुर चंचल थे

आज शून्य से पूछ उठा मन—
क्या मानव का पूर्व पुरुष भी
तभी कभी जब दीर्घ वपुष पशु
रहते थे, जीवित था तब भी

किंतु नई रचना अपने को
रोमराजि से रक्षित करती
महाप्रकृति से घर्षण कर कर
प्राणों को जीवित थी रखती

आह मातृ वात्सल्य यहीं से
अपनी आँखें खोल रहा था
लो माता का हाथ स्नेह से
अपने शिशु पर डोल रहा था

और क्रूरता इन नव पशुओं
में पहले से अल्प हो रही
ज्ञान किरन थी धुंधली धुंधली
अंधकार का सिंधु ढो रही

यह प्राणी अहेर करते थे
अपनी चंचल शक्ति जताते
रचना का क्रम यूथ बनाता
बहुधा मिल कर पीते खाते

नयन खोल कर देखा करते
चित्र सदृश भीतर उतराते
तत्त्वों के नव महोल्लास में
कभी कभी चंचल हो जाते

मानव का वह आदिम पशु भी
यहीं कहीं घर्षण करता था
अपनी बुद्धि लगा रह रह कर
अन्यों से आगे बढ़ता था

कितने युग युग कल्प कल्प वह
बीत चुके हैं व्याकुल पंथी
शक्ति करोड़ों मन रवि की भी
बाहर फैल बनाती ढंडी

रवि ठंडा होता जाता था
और भूमि सूनी रहती थी
नहीं विधाता की गरिमा में
मेरी सारी सृष्टि पली थी

कौन लक्ष्य था ध्येय कहाँ था
जो यह अगनित प्राण बने थे
और तिमिर में लुप्त बनाते
समय स्तरों के जाल जमे थे

अरे अभागे पृष्ठ भूमि को
अपनी सत्ता में लय मत कर
तेरी छाया भी न ज्ञात थी
सृष्टि चल रही थी तब भी चल

आज वानरों सा वह प्राणी
जो मानव का रूप गया बन
मैं उसके विकास को लखकर
आनंदित सा करता गर्जन

मैं अपराजित यह परंपरा
अपने जीवन की धारा है
कौन कह रहा है परिवर्त्तन
मानव के सुख की कारा है ?

नहीं था मानव का जब स्वप्न
भूमि पर थे तब भी तो प्राण
अरे यह प्रबल विकास...
शक्ति का अनुवर्त्तन कर नित्य
बलदते रूप और आकार,

और रह रह कर आया ज्ञान,
भूत की एक महागतिजात
चेतना का फिर हुआ प्रसार
और लाखों वर्षोंका मार्ग
पार कर, बदल बदल आकार··
ज्ञान की लहरों में चुपचाप
शनैः मचने लगता कल्लोल
सहस्रों वर्षों की वह बात
सृष्टि जीवन में क्षण भर मात्र··
उसी का मानव को अभिमान ?

आज मानव गीतों का लास
प्राण की शक्ति बना सुखसार
छू रहा दूर दूर नक्षत्र
और वह करता है संघर्ष
प्रकृति के शासन से सन्नद्ध
अभी तो है कल की ही बात
किंतु वह मेल किये है एक
बदलता है तीनों आकार
और वह समय पंथ पर मुक्त
बदलता है अपना संसार
आज वह स्वामी है निर्बाध
भूमि को बना रहा है दासि
सुखों की तृष्णा से अभिभूत
कर रहा है कितना श्रम आज
निरंतर चिर गति का मधु स्रोत
हारना है उसको अज्ञात...

यह जो युग युग की सीढ़ी चल
इस स्थूल रूप को बदल बदल
मस्तिष्क ज्योति से भरा दीप्त
प्राणी, मानव रे तृष्णाकुल

उस ज्योत्स्ना द्युति में ही विलीन
युग युग का आकुल चीत्कार
इस जड़ चेतन के महामिलन
में उपजा नूतन करुण प्यार

गति में इसके है श्वास भरी
कर में श्रम लेता मधुर श्वास
वह शब्द रूप रे रंध्र रंध्र में
भरे महागति का विकास

मैं देख रहा यह प्रकृति चला
यह भूमि बदलती अगन रंग
मैं चाह रहा यह सारा सुख
जीवन का हो उल्लास अंग..

सर्ग—७

आख्यान :

मेधावी ने चकित होकर देखा मनुष्य का इतिहास कितना अल्प था, किंतु अपने प्रति प्यार आंदोलित हो उठा—

युगों के अट्टहास के बीच
एक पल यह कैसा चीत्कार
नियम के आकर्षण में आज
जागता ऐ मानव का प्यार···

तभी तो ज्ञान बना निःशक्त
वासना के प्याले में आज
प्यार के फेन बना अभिराम
मानवों के अधरों का लास
स्पर्श करने की सुधि में भोर
कांप उठता है भरे मरोर !

अरे सागर के संमुख बूंद
वज्र के संमुख चिन्गी मात्र
और यह लघुता का उल्लास
बन गया मानव का यश दीप्त !
हंत ! उन्माद !!
अरे यह क्या संसृति संपूर्ण
खोजती प्यार प्यार का गीत
किंतु सब कुछ भी जान

मनुज का यह अज्ञान
भार सा क्यों छाजाता स्फीत
अरे केवल विचार का रूप
अधूरा बिना क्रिया की शक्ति

व्यथित है यह सारा संसार।
निराशा की झंझा में भूल
बिखर जाती हैं कलियां हाय,
मदभरा अक्षय यौवन कोष
काल के बर्बर हाथों बीच
निचुड़ कर कर उठता चीत्कार,
और यह मानव हो भयभीत
तिमिर में रो उठता नतशीश,
परिधि बन जाती कारा घोर,
छटपटा उठते व्याकुल प्राण
रुद्ध हो जाते मीठे गान,
नीड़ में भरते श्वास विहंग
डूब जाते जलचर निःशक्त—
दूर तक मानव का अवसाद
सुलगता बन पतझर की रात
अमरता के ये ज्योतिर्बिंब
अंधेरे में गिरते निष्प्राण
भटकते से अपना पथ भूल
नहीं मिलती जब कोई राह
ग्लानि से भर भर आती आँख

आपदायें वह दीर्घाकार
घटाओं सी मंडरातीं घोर

आह प्राणों की भीति महान
क्रान्ति बन कर कर उठती रोर,
खींचता था जिससे वह वारि
टूटने लगती वह ही डोर...
अंधेरे में हलचल यह व्याप्त
जगाती मेरे स्वप्न महान...

सुन रहा हूँ पैरों की चाप
सुन रहा हूँ मैं अगनित बोल
सुन रहा हूँ नूपुर झंकार
सुन रहा शैलों का कल्लोल

एक दिन आर्य्य विजय का घोष
पहाड़ों में उठता था गूंज
वृषभ घंटा ध्वनि पर भर ताल
ऋचाओं का स्वर उठता झूम

सिंधु की लहरों में भर फेन
वाहिनी जाती थीं नदपार
द्रविड़ सभ्यों के आयुध घोर
पराजय की करते झंकार

सहस्रों वर्षों तक गंभीर
गहन वन में जब फूटी रश्मि
कौन भर स्वर में चिर उल्लास
कह उठा है आनंद विभोर
सत्य की ओर !
ज्योति की ओर !

आवरी सा गंभीर विशून्य
नाद जिसमें है अमर सदीप्त
आज भी कहता है अनबूझ
मानवों की जीवन की जीत

अप्सराओं के कोमल स्वप्न
मनुज की मेधा का अवगाह
देवताओं की विकसित खोज
साम्य में करुणा का अवसाद
कर्मकांडों का उन्मद खेल,—
और फिर 'चारवाक' का घोष—
'नहीं है कुछ भी, सत्य विवेक,
मनुज का ध्येय स्वयं संतोष।'
'कपिल' 'जाबालि' 'यास्क' 'मनु' आदि
सभी की अपनी अपनी बात
और गौतम का ऐसा गीत
गा उठा था पूरा संसार
आज भी चीन खड़ा है नम्र
खोजता है जीवन की थाह

याद है मेधावी 'शंकर'
उगलता ज्वाला प्रलयंकर
अरे माया का तांडव नृत्य
और फिर नारी से ही हार !

याद है ब्रह्मपुत्र से सिंधु
हिमालय से आसेतु पुकार

भक्ति की गूंज उठी थी एक
समर्पण ही प्राणों का लास !

और सूफ़ी कवियों का प्यार
तड़पता खेल उठा सुकुमार
पूर्व पश्चिम के खोकर भेद
एक मानव पर था विश्वास
रहस्यों में गंभीर अरूढ़
अरे ज्ञानी थे जैसे मूढ़

आज तो दोनों केवल चित्र
जहाँ परिचित भी हुए विचित्र

जहाँ है ज्ञान वहीं है दु:ख
व्यथा में कितनी मीठी प्यास !

पूछ तो चट्टानों से पूछ
लिखा करते थे क्यों चुपचाप
सुदृढ़ आदिम मानव ले भाव ?
आज जो तू आँखें विस्फार
देखता विस्मय से भर मौन
पुरातन सरल पुरुष का मोह
पुरातन नारी का वह गीत !

और वह दिन मोहाकुल मत्त
कर उठा था पागल अभिसार
पुष्पधन्वा की कोमल मार
कर गई झंकृत उर के तार

आह रे संसृति के उल्लास
पुरातन भी तू सदा नवीन
जन्म में मृत्यु आज है लीन
खोल कर आँख तनिक तू देख
कौन सा पथ चल आया आज
अरे पीछे का करता मोह
आज भी तो कल का सा प्यार
आह गति के द्वन्द्वों में लीन
अरे विह्वल हो यों न पुकार
देख नर्त्तन, यह जीवन शक्ति
अरे अपराजित युग युग मुक्ति
आह शाश्वत के भ्रम में मूर्ख
सनातन छवि में खोये जाग!
देख नर्त्तन का मिथुन विराट !!

हरहराते हैं व्याकुल वृक्ष
तिमिर हिल हिल उठता है आज,
'निनैवे' के बरबत के गीत
कांपते हैं मरु पर अभिशप्त,
अरे शस्त्रों की सुन झंकार
याद आते हैं फिर साम्राज्य...
'फ़राओ' की कठोर वह दृष्टि
या कि फिर 'होमर' का वह प्यार...
रोम का वैभव...हाहाकार
हँसो मत मेरे मन के गीत
हँसो मत वृक्षो, हँस मत वायु,
पूछ तो क्या कहती है आज

खंडहरों से खंडहर की लाज,
बिजय की वह दुर्दम हुंकार
अभी 'पामीर' रहा है कांप
'दलाईलामा' के विश्वास
गुफाओं में छिपते बन मौन,
सोचता हूँ फिर सब का लक्ष्य
देखता हूँ—दुख होता हाय
अरे मेरी ममता का लास
स्वप्न सा उठता स्वयं कचोट

क्रिया सत्ता का हाथी एक
बुद्धि है चालक सी द्विगुणात्म
हृदय प्रतिध्वनि प्रतिबिंब अपार
अरे जीवन है सबका केन्द्र

विकल मानव की सुख की आस
तरंगों के सहती आघात
भीम लहरों की भीषण डाढ़
बीच भी करता है संग्राम
विजय है जीवन का उल्लास
पराजय मरण और अपमान
युगांतर का यह व्याकुल मौन
कर उठा है सहसा विद्रोह
प्रगति के चरण अभय निःशंक
निराशा बनी भूत का मोह !
करोड़ों चरण चल रहे राह,
न जाने कितने अरबों चिन्ह

मिट गये, केवल कुछ हैं शेष—
और चलते जायेंगे, किंतु
राह का मोह बना है जाल !
कहाँ जाते हैं यह तो बोल ?
अरे अज्ञान स्तरों को खोल !!

खोल कर नयनों को मैं मूक
पूछता हूँ तम से यह प्रश्न
दूर के नक्षत्रों तक बात
गूंजती कर उठती है लास
और लहरों का पागल वेग
बुद्धि से टकराता है हार,
फेन सा जग उठता है प्यार।
लौटती लहरों का वह नाद
पताका सा फहरा निःशंक
क्षितिज की सोती लहरें मौन
हिल गईं हल्के से चुपचाप
और सागर के तट पर आज
अरे आकाशदीप निर्भीक
गुणों की खींच, ज्योति की शक्ति
नाविकों की आशा का केन्द्र;
स्नेह का यह वरदान
आह जग का कल्याण
प्रश्न का उत्तर सुख की खोज
और अपना ही सामंजस्य
'किस लिये' का घननाद
कर रहा घोर प्रहार—

और फिर कशाघात से दीन
चल रही मेरी बुद्धि अपार
एक छलनी, छन छन कर आज
विंदु का सिंधु बनाती आज
और फिर सत्ता का वह गर्व
दीप्त उठता उन्मुक्त पुकार

अरे मैं हूँ 'चंगेज' कठोर
अरे मैं हूँ 'तैमूर' प्रवीर
'सिकंदर' 'नीरो' 'बाबर' आदि
आज मुझमें लय हैं उन्मुक्त
'अलहज़र' या 'नालंदा' भव्य
कि 'विक्रम', 'तक्षशिला' का ज्ञान
लोटता है लहरों सा स्फीत
महामेधा चरणों पर गूंज
आज मैं 'वाल्मीकि' का गीत
आज मैं 'ॐ' नाद का प्राण
आज मैं चीन आज मैं रूस
सहस्रों वर्षों का मधुमूल
आज मैं हूँ, मैं हूँ, मैं आज
बर्बरों का कोमल आनंद
तृषित सभ्यों की हूँ मैं खोज
क्या नहीं है मुझमें ओ बोल
आज मैं ! 'मैं' यह मेरा सत्य
आज 'तू' कह सापेक्ष पुकार
विश्वसत्ता में मेरी लीन
किंतु मैं क्या हूँ ?

केवल भूत !!!!
भूत के परिवर्त्तन का नृत्य
भूत के जीवन का आनंद
समय की मंगलमय गुंजार
अरे अविनश्वर मेरा रूप
सदा अणु मेरे अमर महान
रूप का भेद, शक्ति का द्वन्द्व
नहीं मैं माया और विकार
तिमिर भी मैं, मैं ही हूँ ज्योति
अरे मैं का निर्माता कौन ?
युगांतर की मानव की दौड़
शक्ति सामूहिक बनी समाज
कर चुकी, करती रही विकास
उसी का अणु उसमें मैं लीन
आज मैं केवल अणु भर मुक्त
नाच लूं गाऊं मुग्ध विभोर !
बोल फिर अंधकार कुछ बोल !

भूत है भूत
भूत है शक्ति
कि जो है उसमें क्या संदेह ?
स्वयं मैं छायाचित्र
सरलतम और विचित्र
पूछ उठ अंतराल कल देख
उठेगी मरघट से आवाज़—
कौन तू करता किसकी खोज ?

महुम्मद लाखों ! लाखों राम !!
उठा कर बालू कर में पूछ
'पिरैमिड', 'ताज', चीन की भीत !
और फिर अट्टहास गंभीर !
थहर जायें जिससे वे सिंधु
कांप जायें वह दीप्त पहाड़ !
किंतु यह मरण, मरण भी अल्प
सुदृढ़ जीवन की निर्मल कांति
बद्ध की मुक्ति, मुक्ति का नृत्य
और फिर से नूतन निर्माण
न कोई ईश्वर या छलछंद
न कोई आत्मा या अमरत्व
कल रहा सत्य
आज भी सत्य
और यह गति के पल पल सत्य
राह के पंथी पग पग सत्य
राह है नृत्य
नृत्य है सत्य

न था कल मैं—था किंतु समाज
न था कल मैं, थी सृष्टि अबाध
और कल भी फिर यह ही बात,
व्यक्ति के अहंकार में बद्ध
झुंठाता किसको यह तो बोल !

पुजारी कैसी अंधी भक्ति
देख जीवन की प्रगति महान
झुंठा मत अपने को तू क्लीव
बना मत ध्येय आज अज्ञान

स्वर्ग की धूलि बनी यह भूमि
करेगी कब तक हाहाकार
बदलना होगा आज समाज
कलुष की नींव मिटानी आज !

प्रकृति से तू करता संघर्ष
किंतु आपस में शृंखलबद्ध
दुखों को कह न कल्पना मूर्ख
आह मत कर अपनी गति रुद्ध

एक जो राह—
सहस्रों वर्षों से तू सतत
चला है फिर भी परिचयहीन ?
अविश्वासों का ले पाथेय
दिशाभ्रम को वैभव मत मान
तुषारावृत्त कलिका सा मुरझ
नील पड़ता है तेरा गान

अमरता के दुःस्वप्न !
एक क्षण सो न सका उन्मुक्त
एक पल कर न सका सुख प्यार
अरे मृगतृष्णा में ही हार
ठोकता अपना कुटिल कपाल

आह धींवर कन्या के गीत
जाल में फांस फांस संसार
तड़पतों पर उठता है झूम
और आँसू की बन कर लीक
गाल पर बह जाता हतभाग्य !

कारवानों की झिलमिल टीस
विजन मरु में ज्यों होती लुप्त
और खानाबदोश की आह
गगन में भर उठती है दाह

व्यथित हूँ मैं, मेरा संसार,
निराशा दुर्दम बन कर अस्त्र
वार कर कर करती झंकार,
कांप उठती करुणा की ज्योति
थहर उठता है जीवन आह
आह मैं तम में सूना मौन
देखता दूर दूर नक्षत्र
आज मेरी पृथ्वी का गीत
गूंजता सर्वोपरि उन्मुक्त
खोजता हूँ मैं सुख का केन्द्र
हृदय के भीतर है जो बंद
और जिस तक जाने की राह
मनुज का सामाजिक व्यवहार;
अरे जैसी होगी यह नींव
उठेगा वैसा ही घर देख;
गर्भ में जिसके शव का भार
वहाँ खेलेगा कौन अबूझ
समय के बीहड़ पथ पर आज
चल पड़ा मेरा हृदय अबाध
नापता जो तारों के गीत
आज नापेगा जग का लास
अरे विस्मृति के पर्दे खोल

निकालूंगा वह भूले कोष
एक दिन जिन पर थी अभिलाष,
आज कैसे तम में लयमान
कहाँ तक यह गति का संभार
और मानव का यह अभिमान—
तड़कती दीवारों सा आज
थहरता है गिरने के पूर्व
नींव क्या थी इसकी अज्ञात...

आह मानव के ज्ञान...
प्यार की मृदु छाया में स्नात
साथ चल तूभी ज्योतित रूप !
महागति का उल्लास !
फट रहे मेघ निकलता प्रात
नयन में छाती जाती ज्योति...

सर्ग—८

आख्यान :

आदिम मानव से धीरे धीरे मनुष्य उन्नति की ओर बढ़ रहा था। उसका ज्ञान अपनी परिधि फैला रहा था...

बज रहा बिगुल निनादित घोष
फूंक दो वंशी में फिर श्वास
युद्ध औ' शांति यही दो गीत
आज तक मानव के इतिहास

महायोद्धा की दीप्त कृपाण
दार्शनिक की सूखी मुस्कान
गीत बन कर कवि का अनमोल
एक छलना का देते दान

एक यश की तृष्णा में दृप्त
और कोई रहता सुनसान
विश्व के अगनित छायारूप
देख कर सुलग उठे ये प्राण
वाहिनी की पगध्वनि उन्मत्त
कहीं पर कंपित करती भूमि
कहीं अपने हाथों को खोल
प्यार की रागिणि उठती झूम
समय की लहरें विस्तृत घोर
आज मैं आवर्त्तन हूँ एक
तिमिरमें घुलती नर्त्तित वायु
उठ रहा मेरा गीत अभेद

(गीत)

यह 'यवद्वीप' विजन अधजागा
एक विहग तरु पर बोला
घोर विपिन की धूमिल छाया
में कुछ स्पंदन सा डोला

अरे कौन है यह कुरूप सा
धीरे धीरे मौन हुआ
कभी वृक्ष शाखा पर चढ़ता
कभी उतर विश्रांत हुआ

तपा हुआ तांबे सा तन है
चिबुक भाल से हीन वपुष
रोमराजि से आवृत प्राणी
सोकर जागा क्षुब्ध विसुध

छोटे किंतु सुदृढ़ हाथों से
कच्चे पल्लव खा खा कर
घरर घरर की ध्वनि करता सा
पानी पीता है झुक कर

पल भर में ही चंचलतन वह
लघु पशु के पीछे भागा
टीले खड्ड और समतल पर
पीछा करता सा भागा

एक उमँगती स्फुट ध्वनि गूंजी
कच्चा मांस किया चर्बण
नग्न वपुष पर रुधिर टपकता
दाँतों में होता घर्षण

किंतु अहेरी ने कब देखा
सोते जीवन का सुपना
इसे पराया सा कब लगता
जो कुछ भी कहता अपना

नभ में भोर मचलती फूटी
कनकतार से सज्जित सी
लो वह लालिम आभा हँसती
मौन हुई सी लज्जित सी

नग्न भूमि पर बैठा थकता
सोच इसे बिल्कुल अनजान
सत्ता के हित हुई पेशियां;
मौन समीरण भरता गान

और वहीं श्रम श्लथ नारी है
सोती आँखें बंद किये
यौवन भी गदरा न तड़पता
किंतु स्पर्श सुख रंग पिये

घोर शिखर उत्तुंग भयावह
नीचे भीषण खड्ड पड़े
दूर दूर निस्तब्धा के हैं
अंधकार से दाँत गड़े

झुके हुए कंधों को लेकर
नर आगे चल उठता है
नारी दौड़ पहुँचती आगे
बालक पीछे चलता है

भोर हुई मध्यान्ह चल गया
संध्या गई निशा आई
जाने कितने अब्द भागते
गति में सुलझन कब आई ?

कभी कड़कती ठंड हवा के
दाँत बजाती बहती है
कभी तड़कती धूप ज्वाल सी
झुलसाती चिल्लाती है

और गगन में अट्टहास कर
कुलिश गरजते भीषण स्वर
वज्रनाद से मूसल धारा
करती है प्रहार आतुर

भयद क्रोध से ज्वाल हिलाता
ज्वालामुखि का मुख खुलता
लपलप कर जिह्वा थहराती
गर्जन सा भीतर लड़ता

ध्वंस निनादिनि लहरें पागल
हाहाकार मचाती हैं
शैलश्रृंग वे टूट फिसलते
मरण पिपासा गाती हैं

अरे अहेरी निर्बल पशु सा
सबसे उलझ रहा आतुर
भय से पीछे हटता हटता
बढ़ता है वह रुक रुक कर

समीरण क्षण भर हो जा मूक
नहीं मिट पाई तेरी भूख
मिट गये देख वपुष वह दीन
कह रहा जिनको मनुज कुरूप
वही जो उस दिन सबसे तीव्र
बुद्धि का करते सृजन अपार
वही जो भूख प्यास के दास...
अरे नर नारी का संयोग
बन गया सुख का पहला केन्द्र,
अरे अपनी रक्षा के हेतु
यत्न करते जो निरत अखेद
भूख लगती खाते थे मांस
प्यास लगती पीते थे वारि,
स्नेह के छोटे छोटे फूल
गंध सी भरते थे अवदात
वही जो आज होगये हार,
और जब मन में उठती चाह
भुजाओं के बंधन में भूल
चूमते थे वह नंगे गात
नग्न थे दोनों लज्जाहीन
परस्पर रे कितने अनिवार्य्य
सृष्टि का पहलाभाव
जहाँ से सामाजिक उद्भाव
परस्पर द्वेष क्रोध से दूर
मानवों का आपस का प्यार,
रात में आता होगा चांद
और रहते होंगे अनबूझ

धूप में थक कर वह चुपचाप
लेटते होंगे छाया ढूंढ
और वृक्षों के खाकर पात
टोह करते पशुओं की घात,
किंतु फिर से छाया सुनसान,
बीतते हैं लाखों ही वर्ष
और फिर से पृथ्वी के वक्ष,
गगन के तल, जीवन का शब्द...
ज्ञान की बढ़ती जाती परिधि
और मानव की शक्ति
चाहती अपनी मुक्ति
आह कैसे भी वह रह जाय...
शैलशृंगों पर जब थी बर्फ़
और बहते थे नद गंभीर
करोड़ों वर्ष चुके थे बीत
भूमि की सत्ता हुए अबाध
मेघ झरते थे, वज्र प्रहार
घास, या पेड़ या कि मरुभूमि
शनैः चढ़ता था मानव किंतु
हज़ारों लाखों वर्ष अभूत
सतत चलता था अपनी राह
भूख के आघातों को जीत
हरा कर धूप
हरा कर बर्फ़
न झुलसा—ठिठुरा—रहा अखेद
दुंदुभी का सा शब्द महान

गूंजता समय शून्य में घोर
बढ़ चला अपराजित वह जाग...
अल्प इन पगचिन्हों को देख
करोड़ों अहर्निशा का भान
हो रहा है मुझको फिर आज...

(गीत)

स्फूर्ति मचलती नर नारी में
दोनों आज अहेरी हैं
भीषण पगध्वनि शैल हिलाती
भूख प्यास फिर खेली हैं

शक्ति शक्ति का नाद उमड़ता
धीरे धीरे प्यार जगा
यौन योग पर धीरे धीरे
मानवता का राग उठा

वह विकराल सिंह मूर्छित सा
श्वासें भरता है अंतिम
जिसके नख प्रहार से छलकी
नर के उर पर छवि लालिम

सुदृढ़ दंड वह लिये हाथ में
अब भी क्रोधित होता है
घोर भयानक आघातों का
भीषण घर्षण ढोता है

एक भयानक विषधर रह रह
दूर रीछ से लड़ता है

कभी कभी भयविह्वल सा स्वर
नर के मुँह से फटता है
एक किलकता बालक आकर
नर का कंठ घेर बांहें
डाल पुलकता है चंचल सा
गूंज रहीं उसकी आँखें
अल्प भाल पर केशराशियां
आंदोलित हो उठती हैं
दबे चिबुक को कर पर धर कर
आँखें तन्द्रिल झपती हैं

नारी भी अंगराई सी भर
नर का कंठ भुजा में बांध
शक्ति भरी आलिंगन करती
देख रहा वह नर अनजान

चौंक उठे सहसा वे दोनों
दूर दौड़तीं दो नारी
एक दूसरी को पल भर में
उठा घुमाती-मदमाती

एक पुरुष आता है लेकिन
तब तक फेंक देखती है
भयद अगम खड्डों में गुंजित
हाहाकार, किलकती है
सिंह, रीछ, गैंडे औ' हाथी
सब ही तो पथ के गामी
कितना यह संघर्ष अपरिमित
सत्ता के सब अनुगामी !

वह भीषण भैंसे जो छिप कर
करते हैं रह रह आघात
पाषाणों के अस्त्र बना कर
करता है उनसे व्याघात

न कर अवसाद
दुखी मत भूल
खोदता है मानव का ज्ञान
याद आया क्या मुझको आज !!

एक दिन इटली का वह घोर
शैल लख कर वैज्ञानिक भाव
टोह करता पहुँचा चुपचाप
खोद कर देखी—गह्वर एक
और उसमें थी टूटी अस्थि
एक सिर की अभिभूत
अरे लाखों वर्षों के पूर्व !
सोचता हूँ होगी यह बात—

(कहानी)

एक नर की भुज प्रलंबित
घेर करतीं शक्ति
एक नारी रुद्ध, करती
घर्ष, होने मुक्त
मौन शैलों से कभी वह विकल उसका नाद
लड़खड़ाता सा गुंजाता पुरुष का उन्माद
और नर का दृप्त यौवन आज उसको छोड़
वासना का वेग अपना अब न सकता तोड़

नग्न नारी नग्न नर है
प्रकृति के वह जंतु
सिंह सिंही से परस्पर
घर्षमय हैं किंतु

विकल नारी मुक्त होने कर रही आक्रन्द
शक्ति नर की बांध उसको पतित कर निर्बंध
लो अचानक एक सूखी बेलि से गलबद्ध
शंख, नारी हाथ में आया, हुई सन्नद्ध

फूंक उसमें श्वास
उसने हरहराया शब्द
जो गुफा को भेद
कानन में गुंजा उन्मत्त

दूर एक अहेर करते विकट नर के कान—
में प्रतिध्वनि शब्द करता, विकल करता प्राण
कूद कर चट्टान से वह दौड़ता सावेग
औ' गुफा के द्वार पर अब ठिठकता है देख

विकल नारी भूमि पर थी
और नर विकराल
छाँह सा पाषाण की
उस पर झुका तत्काल

एक पल में ही अहेरी का उठा वह हाथ
दंड उसका वेग से कर उठा घोर प्रहार
घोर हाहाकार करता गिर गया आतंक
रक्त की धारा बही लेकर तड़पता रंग

और भूपर गिरी नारी
के सुमांसल हाथ
उठ गये उल्लास से
स्वागत भरे मृदु लास

वह अहेरी हँस उठा, था उमड़ तन से लग्न
और क्षण भर में हुए वह वासना में मग्न
देर तक किलकारियां वह नारि की स्वच्छंद
दृप्त नरहुंकार में भरतीं नया सा रंग

छोड़ आलिंगन उठे वह
भूख भरती भ्रांति
चल दिये वन प्रांत दोनों
थी गुफा एकांत

अरे अगनित वर्ष बीते मिट गये सब हार
और ज्वालामुखि फटा कब कौन जाने आज
मुख गुफा का बंद करके शैल ने ली श्वास
निविड़ तम में रह गया वह अभागा इतिहास

गगन में निर्मला ज्योत्स्ना
मंजु करती गान
गर्भ में उस शैल के वह
कथा अब सुनसान
और लाखों वर्ष बीते
मौन हैं पाषाण
मानवों की आदि तृष्णा
रह गई चिर म्लान

(गीत)

मौन है अवसाद मेरा
स्वप्न का अभिशाप मेरा
देखता हूँ मैं मनुज में
मेल की यह मुक्ति घेरा
कांपता है आज जीवन
चिर व्यथित उन्मत्त यौवन
मृत्यु का यह रंग रह रह
नील करता दृष्टि क्षण क्षण

मैं यहाँ अरमान लेकर
देखता हूँ स्वप्न देकर
यह अमा के पट रहे खुल
चाँद का दीपक सँजो कर

प्यार की छाया मधुरिमा
हृदय में व्यापी सगरिमा
भूलते मन आज फिर से
देख सुलगी नवल सुषमा

कौन है जो छाया सा आज
कांपता मेरे नयनों बीच ?
कहाँ है वेदों का वह घोष
कि नारायण की नाभि गभीर
उसी में से निकला था पद्म
सृष्टि का नायक उस पर बैठ
कर रहा था वेदों का गान ?

कहाँ हैं आदम हव्वा आज
कि बन कर ईश्वर के मृदु पात्र
कर रहे थे वह सृष्टि अपार ?

अंधेरे के झिलमिल से दीप
बुझ गये काल फूंक से कांप
लौटती लहरों की टंकार
गिर गई करती हाहाकार

बोल तू किसको कहता सत्य
कल्पना कब जीवन आधार ?
नींव बालू की रख कर हाय
बनाता है उन्नति प्रासाद ?
अधूरे तेरे सारे गीत
गूंज पायेंगे कब तक बोल ?
उंगलियां जो अस्थिर हैं स्वयं
गांठ पायेंगी कैसे खोल ?
'अरस्तू' भी रोता है आज
स्वयं लज्जित है विकल 'कबीर' !
सत्य की परिधि बनाते व्याध !
वंदिनी के उच्छ्वास
रहस्यों के स्पंदन में भूल
बनाने चले सदा का मार्ग !!

किंतु यह व्यंग्य बना आकाश
कान में कहता है चुपचाप
गर्व मत कर अपने पर आज
स्वयं को समझ न तू संपूर्ण

भविष्यत् के पर्दों को हटा
नहीं तू देख सकेगा राह,
आह कितना कितना अवसाद
जानता, अनुभव करता मूक

एक दिन वे प्रभात की रश्मि
बने खोला करते थे पद्म
मनुज की मेधा का गुंजार
उठा करता था जिन पर मुक्त,
किंतु उन पर अंधा विश्वास !
रो उठा फिर पृथ्वी का हृदय
श्वांस सी भरता शून्य विराट
काल अजगर मुख में खिंच हाय
सभी खो जाते लुप्त:प्राय

टूट कर छिन्न होगये भाव
प्राण में फिर छाया अवसाद
दुखों का मूल मनुज का स्वार्थ
जीतता जिससे जाता हार
और आपस में श्रद्धाहीन
कर रहा अविश्वास का वार

बोलने में भी जो असमर्थ
गये वह 'हीडलबर्गी' दूर
युद्ध करते पशुओं से सतत
जिन्हें अवकाश न था कुछ देर
हज़ारों वर्षों का गतिबंध
तोड़ कर फिर से जागे जीव

और उस 'पिल्टडाउन' में देख
अनेकों आये खोये मौन !

मनुज का यह इतिहास
भर रहा विस्मय का विश्वास
आज का 'मैं' हूँ स्वयं विराट
किंतु इस एक बूंद का लास
अनेकों धाराओं का पाश
बही फिर जो सूखीं चुपचाप
मिट गये पग चिन्हों के लेश
अस्थि का शेष रहा संभार
किंतु फिर भी मन गया न हार
आह वह 'नीन्डरथैलियन' दूर
उठा सिर नहीं सके जो दृप्त
हुए वह दरियों के गृह मौन
किंतु फिर भी तो देख
मृत्यु का भय अवदात...

(मृत्यु की पगध्वनि)

मौन मुख, विस्मय प्रतारित
आज पशु सा विकल मानव
मरण के उस पाश में बँध
चिर व्यथित उन्मत्त भैरव

आज तक पशु मारते थे
किंतु यह क्या यातना है
कौन था तन में बता तो
गमन जिसका शून्यता है

अब न यह हँस रो सकेगा
अब न आलिंगन भरेगा
कौन है जो सतत चंचल
घोर पशुओं से डरेगा

विकृत सा मुख है भयानक
शैल सा चुपचाप निश्चल
सब प्रहारों का भयंकर
कष्ट इस पर व्यर्थ केवल

मूक नर नारी सभी हैं
देखते उस गलित शव को
और नव शिशु देख मृत का
आगमन फिर लगा सबको

लो गुफा में कांपते हैं
और औंधे गिर गये हैं
मृत्यु के वह स्वर विताड़ित
गगन में फिर खिंच गये हैं

आज जीवन है मरण की
प्रबल छाया से भरा लय
गाड़ते हैं शव सकंपित
पुनर्जन्म विकास भयमय

सभय वे निज अस्त्र रखते
फिर गगन को देखते हैं
रात में छाया वही फिर
नाचती सी देखते हैं

और माता अल्प शिशु को
वक्ष से चिपका रही है
और सब मिल कर दबे हैं
कोण में, तिमिरा भरी है

जों क्षुधा के हित मिले थे
भय प्रकंपित एक होते
दुखी से व्याकुल कभी वह
क्षुब्ध होकर उमड़ रोते

सहस्रों मर जाते थे डोल
प्रकृति की बलि वेदी पर मूक,
परस्पर का वह घर्षण घोर
रक्त से भर देता था भूमि,
काल को जो न सका था आँक
भेद ऋतु के थोड़े से ज्ञात
पके फल की करता था खोज
शीत ऊष्मा अनुभव था किंतु
प्रकृति का दास बना अधिकांश
सतत करता था वह संघर्ष...
लगा वह खंड रूप में विकल
विचारों को दौड़ाने तीव्र...
पिघलते थे जो खेत पहाड़
अभी तक ऊपर ही थे मौन
फलों से पीलापन था दूर...
अनेकों शैलों से यह जंतु
हमारे ही जैसे जो लोग

झुके निर्बल से आते हार
भयंकर आँखों में ले भूख
लूटते करते हैं संघर्ष
मृत्यु ही जिसका है परिणाम

अरे लो यह क्या है आपत्ति
पहाड़ों से बहता क्या श्वेत !
बर्फ़ है फिसल रही घनघोर
और फिर लगी बरसने बर्फ़
गये दिन रात, गये सप्ताह
महीनों बीत गये चुपचाप
किंतु यह बर्फ़ न होती बंद
ढंक गये मैदानों के खड्ड
ढंक गये नद झीलें तालाब
काननों पर छाई वह घोर
स्तरों पर स्तर छाये निर्व्याज
मर गये प्राणी सब अनबूझ
किंतु मानव जीवित था एक
अरे मानव जीवित था ! देख !
गुफाओं में छिप कर चुपचाप
पल्लवों को अपने पर ओढ़
बालकों को रख उर तल ऊष्म
अग्नि से मैत्री करता मूक
वही जो ज्वालामुखि का होंठ
बनी थी लपलप करती घोर
वही जो झुलसाती थी देह
वही जो रोका करती राह

रगड़ से जो कानन में व्याप्त
अचानक पाषाणों पर दीप्ति
छटा दिखलाती खाकर चोट
वही अब जली गुफा के बीच
शत्रु था मित्र !!
रात दिन लाते खाद्य पदार्थ
मांस करते मिल कर एकत्र
शुष्क तरु में जो छाई आग
भयद दावा बन कर उद्दीप्त
वही करती थी दरि में ज्योति
उसी के चारों ओर मनुष्य
बैठ करता था अपना काम ;
एक दिन धूधू करती ज्वाल
गिर गया उसमें पशु का मांस
निकाला तब तक भुना, न देर,
और खाने पर आया स्वाद...
और जब गुफा द्वार से तीव्र
बर्फ़ के आये झोंके घोर
कांप कुछ दरि मुख पर हो मौन
देखने लगे न समझे त्रस्त
किंतु दरि के भीतर के प्राण
छागई उनमें ऊष्मा—और
एक ने आकर गह्वर द्वार
कर दिया पाषाणों से बंद
बन गया वही किवाड़,
और हँस उठा अचानक एक
झूम कर लगा दिखाने झूम

कि कोई पशु भी हो निःशक्त
नहीं आ पायेगा अब रात,
अभी तक रक्षक थी यह आग
और जीवन रक्षा की साध
बन गई मेधा का अभिसार
क्रुद्ध हो प्रकृति कर रही वार
किंतु मानव लेकर पाषाण
बनाता था अपने औज़ार
नुकीले पाषाणों की नोंक
गोल से अधिक दे रही कष्ट
और वह लग्न...
दुखों से ही होता है ज्ञान
चतुर बन जाता मूर्ख, अजान,
अस्थि जो 'फॉसिल' सी हैं आज
उन्हीं के थे यह सब अभिमान
आज भी चित्र बने अपरूप
पहाड़ों में भरते हैं गीत
कभी 'क्रोमैग्नन' दीर्घाकार
खोदते थे उन पर इतिहास
नहीं था जब वाणी का लास !

हज़ारों अश्वों की वह अस्थि
बनीं उनका भोजन आहार
पड़ी हैं पृथ्वी तल में मौन
अरे उनका मस्तिष्क
चित्र में भरता रंग अपार ;
और मैदानों में थी मुक्त
घास-मीलों सिवार की राशि,

अश्व बारहसिंघों का स्थान
बना जो मानव का गृह एक,
आह् भूमध्य सिंधु के पास
देखते होंगे गोरे वर्ण,
सुदृढ़ मांसल नारी का वक्ष
फूलता होगा चित्र विलोक
चित्रकारों के लालिम अधर
नयन को लेते होंगे चूम
पत्थरों पर पत्थर का वाद्य
सुना कर उठते होंगे झूम...

भूमि के वक्षस्थल पर देख
लगे फिर उठने कानन घोर
वायु में छाई ऊष्मा वाष्प
खोगये 'क्रोमैग्नन' भी दूर
कि वह जो 'नियोलिथिक' थे प्राण
बनाते अस्त्र आदि का त्राण
सुघर करते थे जो पाषाण
फैलने लगे भूमि पर आज

(गीत)

न भूल मानव अपार सुषमा
महान यौवन अभेद रागिणि
हृदय गहनतम, विराट मेधा
पुकारती है प्रबुद्ध 'मादिनि

अछोर जीवन असंख्य आशा
न खोज का अंत है कहीं भी

विशून्य अब भी प्रतिध्वनित है
न डस सकी काल क्रुद्ध नागिन

अरे व्यथित किस लिये हुआ हूँ
पथिक तुझे याद आ गई क्या
घटा बनी नीलिमा प्रसारित
वही निराशा वही अभागिन

अशांत उर क्यों तड़प उठा है
अरे प्यार क्या न मिल सकेगा
अवाक यह रव रहस्य निर्मल
कि तारिला यह विमुक्त यामिनि

(प्रतिध्वनि)

तू नहीं जानता अणुभर को
फिर स्रष्टा का क्यों गर्व लिये
अपने पैरों के तले स्वयं
रोड़े बिखराता क्यों अजान

पलभर की तेरी यह तृष्णा
क्षण भर को तेरा अन्वेषण
तू क्या जाने हैं मुंदे अभी
पृथ्वी में कितने अगन गान

जाने कितनी अस्थियाँ अभी
हैं काल अक्षरों सी विलीन
जाने कब तक सुलझायेगा
मानव यह गति का दुरभिमान

मेरे अंतर्बाहर को जो
व्याकुल कर उठता बार बार

वह चिर रहस्य है निभृत मूक
मानव के स्वप्नों का विहान

इतिहास पुरुष की धमनी में
अब भी है ऊष्मा रही व्याप
यह जीवन, मृत्यु-सिंधु-बेला,
परिचय का आत्म अबोध ज्ञान

मैं देख चुका आकाश अरे
मैं देख चुका सत्ता प्रसार
पृथ्वी देखी यह तत्त्व देख
प्राणी विकास भी यह महान

पर कहाँ पूर्णता मिल पाये
या छलना ही है एक सत्य...
मत भूल हृदय ! मानव की गति
इस पर भी गा दे एक गान

यह खोज कभी है पूर्ण नहीं
जीवन का कोई नहीं अंत
फट रहे मेघ फिर चमक उठा
वह अमल सूर्य्य देदीप्यमान

कितने युग युग का अन्वेषण
कितने वर्षों का अनुभव कर
पाषाण, धातु का कर प्रयोग
होगया सभ्य सा वह बर्बर

मैं जो अब देख रहा उसको
समझे अजान अनबूझ रूप

क्या और सहस्रों वर्षों चल
मेरा भी होगा यही रूप ?

लो काल हँस उठा, सत्य बना
मेरे विचार का यह प्रसार
मैं ठीक रहा—युग युग तक यों
गूंजेगी यह मेरी पुकार

जब प्रकृति जीतनी थी केवल
तब भी मानव था दुखी विकल
जब मानव संघर्षण की जय
तब भी तो दुख का ही संबल

हाँ, मानव का यह दुख महान
यह असंतोष ही गति प्रसार
उसको सुख कभी न मिल पाये
यह उसकी मेधा का खुमार

कितने न गये होंगे शताब्द
जो बोल उठा यह मूक जंतु
फिर आँक उठा अक्षर अक्षर
क्षण बैठ सका कब वह परंतु

अंतर्बाहर का यह असाम्य
मिल सका न सामंजस्य कहीं
अपनी अपूर्णता की छलना
से विकल लड़ रहा सभी कहीं

जो माता सत्ता अधिकारिणि
होगई पितृसत्ता अभेद

कितने सामाजिक चित्र मिटे
क्या मानव उनसे परे ? देख !

जो शस्य उगाये मानव ने
जो करता था वह नये कर्म
क्या इस भौतिक से नहीं बना
उसके जीवन का सत्य मर्म

उस काल मार्ग पर आ आ कर
हो गये लुप्त अगणित महान
चल देखें पीछे छोड़ गये
पगचिन्ह धुंधलके में अजान

पृथ्वी के वक्षस्थल पर हैं
हर भूमिभाग में चिन्ह दीप्त
झंकृति से फिर लहरायेगा
मेरी मेधा का अमल गीत

उद्विग्न न हो मेरे व्याकुल
अंतर्तम के बिखरे हुलास
जीवन की गरिमा डोल उठी
नयनों में भरती मुग्ध लास

मैं देखूंगा वह गति प्रवाह
मैं कालसिंधु का नाविक हूँ
मैं हूँ मानव की परंपरा
मैं ज्ञानकोष अभिभाविक हूँ

मैं नहीं जानता कुछ भी तो
सागर की थाह अजानी है

इस एक बूंद को देख देख
मेरी जिज्ञासा जागी है

पर हार नहीं पाया हूँ मैं
रोकर भी कब होता निराश
मैं खोल रहा धीरे धीरे
युग युग के वह अति रुद्ध पाश

'कैसे है' को सुलझाता भी
'क्यों है' पर तो है मनुज मूक
विस्फारित दृग से कहता है
वह भी मैं लूंगा कभी ढूंढ

इस पृथ्वी पर यह भूमि अरे
कितने न बदलती रूप बार
मर गिर कर विस्मृत होकर भी
मानव ने रूंदा इसे जाग

इस सत्ता के संमुख मानव
है नास्ति सदृश लघुतम अजान
पर विद्युत बन कर कड़का है
उसका ही जागरण ज्ञान

चल देख हृदय इस यात्रा को
देखें क्षण भर को नयन खोल
रे फिर से कांपा अंतराल
लो अंधकार फिर उठा बोल

सर्ग—९

आख्यान :

मेघावी ने देखा आकाश में ऊषा फूट रही थी। पृथ्वी पर अपार सौंदर्य्य फैल रहा था, वह उसमें लय होगया किंतु अचानक ही वह स्वप्न भग्न होगया...

(ऋतु नर्त्तन)

झलमला उठी नभ में ऊषा
क्षण भर खोया वह भार मुग्ध
मेरे अंतर के तारों में
सौंदर्य्य विभा हो गई बुद्ध

धमनी धमनी में यह लाली
फैलती रक्त की ऊष्मा बन
सिहरन सी शिरा शिरा में नव
करती है मृदु मृदु सा नर्त्तन

रजनी की चंचल अंगराई
जो अभी अभी थी रही गूंज
वह दूर हुई, खुल गये नयन
भारिल से अब भी रहे ऊंघ

तरु तरु पर बेसुध मर्मर की
आलिंगन करती एक टीस
नीहारों में झिलमिल करती
बन जाती स्वप्निल अमल गीत

मैं पृथ्वी का सूना प्राणी
केवल अपनेपन की पुकार
इतनी पीकर जो सोयेगा
क्या उसे न आयेगा खुमार ?

व्याकुल नयनों की तारा में
यह हरित आभ क्यों जाग उठी
अत्यंत हीनता की स्पर्धा
अपने सुख को ललकार उठी

जो विजय विजय का अनुगामी
क्या प्रकृति रूप का शत्रु बने
युग युग जिसने है ज्ञान दिया
वह उसे मिटाने क्रुद्ध बने

पागल ! मन का सौंदर्य्य अमित
उसमें यह रूप किलकता है
तेरे श्रेयों में लीन हुआ
यह ध्वंस सृजन भी हँसता है

मानव आये थे हँस हँस कर
रो रो कर सूने चले गये
पृथ्वी के रंगमंच पर ज्यों
पट परिवर्त्तन से छले गये

पर रुक न सका सौंदर्य्य प्रकृति
आनंद आत्मछवि का विकास
धरती पर नाचा रूप अखिल
पल भर को छाया मृदु प्रकाश

पुलकित हिलते लिलि ! स्वर्ण कमल
लघु लहरिल नीली कलना में
लय अंतराल में उथल पुथल
मन भूला रूपित छलना में

किस इंद्रधनुष की मादकता
ममता की मदिर मनोहारिणि
ऊंघी तृष्णा में डूब उठी
फिर फिर गूंजी भूली रागिणि

ओ प्राणों की नीरव पगली
वेदना प्रकृति में रोती क्यों ?
आँसू के हाथों से देकर
लुट रही, न तू चुप होती क्यों ?

क्या हुआ आज यदि यह धरणी
यह शस्यश्यामला खेल उठी
ओ रुद्ध हृदय क्या बंधन की
अति तुझ को सहसा ठेल उठी

मैं देख रहा सुंदरि पृथ्वी
अविराम रूप का सृजन किये
अब भी गति की चंचलता में
नवजीवन का उन्माद पिये

ओ मानव जीवन की नौका
किन आवर्त्तों में घूम रही
तेरी सौंदर्य्य प्रभा को ही
यह सृष्टि अखिल है चूम रही

तू अणु होकर भी बंधित है
तुझ को बंधन का ज्वर भीषण
है तपा रहा अब तक रह रह
जो हो उठता फिर फिर उन्मन

अपनी गति का है गर्व नहीं
यश की भी कोई नहीं चाह
तू अंध तिमिर में खो सब को
भरता है सूनी दृप्त आह

पट बदल बदल कर पृथ्वी यह
नव शक्ति धारती बार बार
पतझर के पत्तों की मर्मर
दुख की कब रखती विकल याद

संहार सृजन के यह दो मृदु
पग धर धर चलता रूप अखिल
मेरे मन पल भर देख तनिक
धारा का यह उल्लास विमल

मंथर मंथर
ओ अनुरागिणि
नृत्य करो री
जीवन धारिणि

आज धरणि में नव जीवन रे
अणु अणु के इस रंगमंच पर
नाचें सब ऋतु रे

परिवर्त्तन की राह नवल नव
फैली गति ऋजु रे

बांसुरि बाजे
मन दुलरावे

कुंज कुटी रे घर घर वन वन
सागर पर्वत में है गुंजन
आज सृजन का रास मनोहर
मुक्त धरणि में नवजीवन रे
तुम कौन ?
तुम कौन ??

हेमन्त :

हेमन्त सिहरती आई री
नूतन तंद्रा अलसाई री
मैं प्राणों की हूँ ग्रंथि सलज
निस्तब्ध गगन
सोई झीलें
गंभीर रहस्य पुलक तारे
नीली छवि में भर लाई री

तारिल निशीथ में करुण करुण
ऊषा में कंपित अरुण अरुण
बग पाँति चली
आशा मचली
चिर व्रीड़ा मदिर सुहाई री
हेमंत सिहरती आई री

शिशिर :

मैं शीतलता हूं सुख दुख से
हिम सघन हुआ मेरा सुपना
मैं शिशिर सुषुप्ति
महानारी

तुहिनों से भींगे पलक लिये
ऊंघे से प्यासे अधर हिला
छाया अंचल में
अनियारी

मैं चिर वियोगिनी दोही क्षण
बन स्वप्न झलकता रवि वेसुध
घिरती फिर सूनी
अंधियारी

बुझ बुझ जाती भूखी तृष्णा
कल्याण ज्योति, जलता जब हिम
गीला समीर
बह जाता री

बासन्ती :

आई ऋतु रानी
धरणि दिवानी
पतझर के झकझोरे जग को
मैंने आ दुलराया रे

शिरा शिरा में स्तब्ध पुरुष के
नवजीवन हुलसाया रे

कोंपल फूटीं फिर विकास बल
महाजागरण से मन मावल

सुलगन भर कर रूप शिखा जल
प्यासे अधर मिला रे
मलयानिल में आलिंगन कर
सरसिज हृदय खिला रे

आसव पी पी घूर्णित नयना
नृत्य करो री कोकिल बयना
नूपुर पागल बाजे
रे यौवन मानी
आई ऋतुरानी

ग्रीष्म :

मैं आह मरूँ कितनी जल जल
यह प्यासे कंठ कराह उठे
नयनों में अंगारों का छल

मैं सूर्य्य पुरुष की तनया हूँ
अंतर में मेरे दावानल
नभ में धूमिल चंदा आकर
कर देता है मन को भारिल

जब मन में दुख घुमड़ा करता
मैं वात्या सी भीषण बनती

स्मृतियों की पीड़ा संध्या में
श्वासों तक को रोका करती

यह चिर वियोग विषधर सा रे
फुंकार उठा करता रह रह
मेरे उन्मादों से डर डर
छिप जाते लघु प्राणी दुस्सह

कितनी सुलगन,
कितनी विह्वल
मैं आह मरूँ कितनी जल जल!

वर्षा :

पुलक करूँ अभिसार रे
मैं सूर्य्य किरण पर चल चल कर
सागर से घट भर भर लाई

मेघ गगन में गरजे द्रिम द्रिम
पुलकित धरणी मानव द्रुम द्रुम

बरसे रिम झिम धार रे!
नीले घूंघट से झांक झांक
हरियाली की लहरें लाई

इंद्र धनुष की मेरी रशना
तड़ित चलित यौवन का सुपना

उमड़े रस मधु प्यार रे!
पुरवैया के तारों को मैं
झंकृत करती सुख दुख लाई

उमड़े काजर के बादरवा
खग पशु में कलरव नव मचता
ढोती स्मृति का भार रे!

शरद्:

मैं ज्योत्स्ना हासिनि
अमल वसन
हूं महापूर्णिमा का हुलास
रे शुभ्र गगन में दुग्ध श्वास
मधु श्वेत हंस, शतदल सज्जित
हूं स्वच्छ अंभ में शांति लास
मैं वीणा वादिनि
इंदु वदन
मैं स्वर्णांचल से सिहर सिहर
मीठी शीतलता से मृदुतर
बन महास्वप्न की दीर्घ प्रभा
मकरंदों में लुकती आतुर
मैं निर्मल यामिनि
गंध सुमन

नृत्य करो
रास रचो
ऋतुनारी

वर्ष पुरुष की प्रेयसि नाचो
मुक्त मिलन में बंधन हीना
ओ मधु भीनी ओ अमलीना

महाप्रकृति के नियम जाल सी
धरणि गगन में नाचो

नृत्य करो
लास करो

मधुर मधुर गति खेले
रागिणि अविरत फैले

वर्ष सुरथ की भिन्न अरायें
मिल गति में चल नाचे।

सापेक्षता छाय से भिन्ना

नाचो री
ऋतु नारी !

ओ हेमन्तिनि

पगधर री
उन्मद री

शिशिर हिमानी

रणन करो
गुंज भरो

जय वासंती

झूम सखी
चूम कली

शुष्के ग्रीष्मा

चरण उठा
गगन हिला

पावस भींगी

कर नर्त्तन
आवर्त्तन

शारद नंदिनि

हँस अमला
खिल कमला

नृत्य करो
मनुहारी
ऋतु नारी

अलिकुल गूंजे
परिमल भरिमल
तरल सरल कल
जीवन झूमे
नूपुर में अलसाहट झिन झिन
प्राणों में अभिभूत विजनता
ताम्र बौर में मधुहर्षितरी
कोई प्यास बुझावे सूनी
महाराग नभ में उमड़े रे
तृप्ति अमर री हृदय अजर री
लास करो
नृत्य करो

बेसुध तन्मय भूल जग तरी
महा ज्योति में खोये वसना
पागल मदभारी
ऋतु नारी !

तुम कौन ?
तुम कौन ??

धरणि :

मैं धरणि सलज, नारी धीरा
पट पहना दो ओ ऋतुदासी

सृष्टि :

मैं सृष्टि विराट अगम सुपना
सज्जित कर मेरी आशा री

तारे :

हम हैं तारे अविरत भ्रम भ्रम

वृक्ष :

हम हैं शाखी मिल झूम रहे
तुम कौन ?
तुम कौन ??

मैं गति हूँ
मैं जन्म जननि री
मैं परिवर्त्तिनि
मरण सजनि री

चंचलता गंभीरा तृष्णा
आत्मभूत रे प्राणी

अणु अणु का यह वस्त्र बदलता
चिर जीवन की झांकी

मानव :

आओ सुंदरि चंचल गतिमय
जीवन में उत्साह नवल भर
वर्ष तुम्हारे कंधों पर कर
धर है पार समय-पथ करता
तुम हो उल्लासिनि राधा
बिदा समय की मृदु आभा

प्राचीनों को कर नवीन
तुम जन्मभूत नूतन प्रवीण
हो एक दूसरी में विलीन
रे स्वागत जीवन कलना

तुम दौड़ रहीं कब से अबाध
कर दिनकर से अविरत क्रीड़ा
तुम भूमंडल की पथिक बनी
परिवर्त्तन से करतीं व्रीड़ा

हे ऋतु नारी !
स्वागत आ री !!

नवल वर्ष में श्वास फूंकतीं
हिम सुगर्भ से जीवन जन्मा
मलयानिल के मधु स्पंदन से
मधु में नयन चलाता

तुम मानव को जीवन देतीं
गति में नूतनता भर देतीं

रसमयि सुंदरि

उगा वनस्पति
उगा अन्न तुम
ज्योति तिमिर दे
अंभ कुहर रे
जीवन घट में अमृत भरतीं

महारूप के पट पट भीतर
ऋतुओं के स्तर स्तर के भीतर
मुंदा हुआ चेतन दिखलातीं

आओ अभिनंदन करते हैं
नर्त्तकि जीवन में वरते हैं

हे ऋतु नारी
स्वागत आरी

ऋतु (एक दूसरी से) :

हेमन्तिनि ! क्या यह वह ही है
जो युद्ध निरत तृष्णा पीड़ित ?
ओ शिशिरे ! क्या इसका ही उर
हिम सम जड़ता से है मीलित ?

वासंतिनि ! क्या मधु में यह ही
कलुषों से आवृत रहता है ?

ग्रीष्मे ! क्या इस का ही जीवन
मरु सा भीषण बन जलता है ?

पावस ! क्या यौवन इसका ही
है भटक भटक रोया करता
शरदे ! सुशांति त्यागे उच्छृंखल
आपस में लड़ लड़ मरता

हाय मनुज तू कितना निर्बल
अहंकार के अंधकार में ?
महाप्रकृति से द्वेष किया सा
भटक रहा है महाजाल में ?

• धरणी :

अब क्यों शोक करे रे मानव
दो पल ही तन यंत्र रहेगा

अपने अभिमानों में पड़ कर
जन्म जन्म की छलना में गिर
वर्त्तमान को छोड़ रहा तू
कल तो तत्त्वों का तत्त्वों में
मुक्त महान मिलन होवेगा
प्रतिपल सुंदर
प्रकृति सदा चल
आकर्षण में तू भी लय हो
वा फिर दुख सह निर्बल व्याकुल
रो मत पागल !

शीश उठा फिर

यह संघर्ष परस्पर का तज
प्रकृति सत्य में लय भर मानव

मानव :

आज मिले रे नयन अंध को
आज मिली रे मुक्ति बंध को
मैं तो महाप्रकृति का कण हूँ
प्रभुपन का अभिमान मिटा रे

एक दूसरे से सुबद्ध हम
अब निर्माण करेंगे फिर हम
प्रकृति मंच पर प्रकृति वस्तु से
हिल मिल खेलें कलुष मिटा रे

जीवन तो चलता ही जाये
अब भी मानव चेत चिताये
महासृष्टि के अणु अणु में नव
गति लय का संभार उठा रे

हेमंत :

जय मैं तेरे जीवन में नव
गांभीर्य्य जगा दूँगी सुंदर

शिशिर :

तेरे कलुषों को ठिठुरा कर
मैं कर दूँगी तुझको मनहर

वासंती :

मैं तुझे नई आशा दूँगी
नव स्फूर्ति जगाऊँगी तुझमें

ग्रीष्म :

मैं पीड़ा का शोषण कर कर
नव स्वर्ण तपाऊँगी जग में

वर्षा :

मैं घट भर भर रस के ला ला
नव जीवन क्षणदा चमकाऊं

शरद :

मैं तेरे मानस का शतदल
मृदु मलयानिल में पुलकाऊँ

आज धरणि में नव जीवन रे
अणु अणु में नव स्फूर्ति जगी है
मानव तृष्णा कलुष बुझी है
नृत्य प्रकृति का महानंदमय
नाचें सब जन मन रे
प्रेम रागिणी
शांति वाहिनी
गूंजे औ' व्यापित रे

गीत अमल चिर धूप छाँह सा
नूपुर ध्वनि से द्विगुणित सुंदर

एक राग सा उठता मोहक
झूम रहा अणु अणु उत्पादक
रास रचो
नृत्य करो
यौवन का नर्त्तन जीवन रे
आज धरणि में नव जीवन रे

पर टूट गया यह अमल स्वप्न
हो गया रूप का नृत्य भग्न
मेरा मन फिर से दुःखमग्न
है सोच रहा मानव का दुख
क्यों है जीवन इतना व्याकुल
श्रम करने पर भी दुख भारिल
तो क्या यह सब है व्यर्थ–विकल
मानव की एक कल्पना—सुख ?

जिसने प्याले को भरा कि वह
पीकर हो जाये मुक्त मत्त
वह देख रहा है अब निराश
प्याला कर में है निबल रिक्त

नगरों से व्याकुल होकर वह
देखता ग्राम के मधुर स्वप्न
ग्रामीण उधर अभिशप्त हुआ
नगरों में दिखता अधिक मग्न ?

है कौन स्थान जो छोड़ दिया
गिरि, वन, नद, सिंधु, गगन अपार

सब पर चल कर पंथी केवल
भरता है सूनी श्वास हार

क्यों सब का साथी होकर भी
एकाकी रहता है उदास
क्या मानव का यह जन्म विफल
क्या असफल धारा का विलास

क्यों परिधि बन गई सत्ता की
यह सामंजस्यमयी आशा
क्यों दुख की सरिता बहा चली
जो थी विचार वर्द्धिनि भाषा

नभ में कलरव है व्याप रहा
हैं लौट विहंगम नीड़ चले
संध्या के कर रजनी वीणा
को अंक धरे फिर मींड़ चले

मेरी तृष्णा का यह प्रपात
आकांक्षा के पर्वत से गिर
कितने फेनों सा असंतोष
अब उठा रहा है मर्मर कर

टिम टिम करते नीरव तारे
मेरी बातें न समझ पाये
बस अंधकार के करुण करुण
आवाहन रह रह कर छाये

यह सनन समीरण बहता है
श्वासों सा धरिणी की व्याकुल

लहरों के स्पर्शों से हिल हिल
गूंजा करता है हो भारिल

मन, शारद रजनी का दुलार
वह पुनिम ससी तू खोज रहा
ज्वालामुखि के विस्फोट बता
क्यों सब चुप हैं, तू बोल रहा

प्राणों की नीरव वंशी में
अब श्वास कहाँ गुंजित करती
जो जीवन की सारी ममता
कानों में ला केन्द्रित करती

मानव की पीड़ा की छाया
मुड़ती सी हँसती कहती है—
तेरी छलना की यह दृढ़ता
तेरे पीछे ही बहती है

मैं चुप होकर भी मौन नहीं
बतलाओ कहता कौन नहीं
पर मेरी आकांक्षा कँप कर
भय की धारा सी हो न कहीं

मानव ! तेरे अभिमानों की
अंधियारी घृणित हुई कितनी
पर तुझको प्यार हृदय करता
यह भी तो तृष्णा है कितनी

यह अमर मूर्खता दंभों की
फिर भी उसमें रोमांच गेह

ओ मूर्तिमान प्रश्नोत्तर तू
अपनी सत्ता का खेल देख
चल उठा समय के बीच आज
इतिहास पृष्ठ मैं उलट चला
रे मेधा का रोही अबाध
मैं अपनेपन को खोज चला.....

सर्ग—१०

आख्यान

आर्य्य सिंधु को पार कर रहे थे और...

सहस्रों वर्षों के सुनसान
बीच मैं घूम रहा हूँ आज
कभी दूरागत क्षीण निनाद
गगन में करता प्रतिध्वनि हाय

जातियां लगती हैं—ज्यों व्यक्ति
काटने को अपना यह मार्ग
मरण जीवन के पग रख शनैः
अरे खोजाता है चुपचाप

सोचता सब से पहले कौन ?
किंतु शंका से सब हैं मौन

भिन्न भूभागों में ले जन्म
मनुज की आकृति में था भेद
भिन्न थी संस्कृति, भाषा भिन्न
अविश्वासों की काली रेख

वर्ग में मानव का विच्छेद
सर्पिणी सी करती निर्द्वन्द्व
अपरिचय का वह गहरा खड्ड
स्वार्थ शृंखल पर भरता रंग

और अब कालशून्य के बीच
जातियों की कड़ियां निर्व्याज
बनाती हैं नव सामंजस्य
अरे यह परंपरा का साज

एक दिन जो अपने में मत्त
सभी का स्वामी बनता नित्य
वही है अंधकार में लीन
उठ रही रोर धूलि से क्षीण

किधर देखूँ मैं आज
अरे उत्तर दक्षिण का रंग
प्रतीची या प्राची का रूप
'आर्य्य', 'मंगोल' कि बर्बर आदि
'सिमेटिक' या 'हेमेटिक' बोल
बोल रे बोल समय कुछ बोल

अभी मैं हो न सका था शांत
गगन में व्यापा अट्टाहास
'हरप्पा' 'मोहिनजोदरो' जाग
कर उठे खंडहर फिर आवाज़—

"कौन कहता है जीवन मुक्त
अमरता की मिट्टी का खेल
सिसक बन कर होती है दूर
मुग्ध ऊष्मा से भरी किलेल

देख यह जो हैं ढूह अजान
एक दिन था नारी तन स्निग्ध

देख यह जो हैं कण अभिभूत
एक दिन थे योद्धा के गर्व

सामरिक अस्त्रों की झंकार
मद भरे नयनों की किलकार
भस्म का बन कर हाहाकार
दिशाओं में करते चीत्कार

अरे वह आलिंगन का प्यार
काल हिम में गल खोये ताप
रत्न वलयों के क्वणन सुमंजु
कटाक्षों का भरते उल्लास

युवायुवती के लयमय नृत्य
गंधवाही समीर से फैल
आह सामूहिक स्नान विभोर
हंस से कर उठते थे खेल

बनाते शिल्पी नगरोद्यान
भूमि भीतर नलिका निर्माण
सुदृढ़ भुज में श्रम का वरदान
खोगये सब कितनी है याद !

नहीं कहता कुछ आज 'सुमेरु'
मौन है मौन आज 'एलाम'
मिश्र का वैभव नतशिर मूक
नीलनद में करता विश्राम

सिंधु की लहरें स्फूर्ति विराट
लिये बहती हैं करती रोर

तुरंगों सी फेनिल मुख धार
कगारों को देती हैं तोड़

ऊर्द्ध्वरेतस योगी का मौन
आह वह महादेव की घोर
न टूटी अब तक गहन समाधि
बन गई ज्वालामुखि की लोर

रात में गिरता था जब चांद
दरकती धरती का वह नाद
एक चिंघाड़ उठाता घोर
गिराता था वैभव प्रासाद

महायोगी पगतल पर सिंधु
पटकता सिर रोता कर लाज
खोगया वह चंचल उन्माद
मनुज का नीरव सारा साज

हृदय फटता है करके याद
अस्थि क्यों खोद रहा तू आज
अरे तम में रहने दे मूक
काल तो है केवल निर्व्याज

अभागे विस्मय कर न अबूझ
तुझी से थे वह व्याकुल प्राण
हंसे रोये चुपचाप अजान
रहस्यों पर करते मद पान

आह पाषाणों से कर प्रीत
न सुख बन पायेगा अवसाद

मिट चले हैं जो जो पगचिह्न
ढूंढ़ता है क्या उनको आंक"

और फिर से नीरवता व्याप्त
सोचता हूँ मैं करुणा प्राप्त
सिंधु तट पर यह सभ्य समाज
सहस्रों वर्षों पूर्व प्रमत्त
गूंजता था रे होकर दृप्त

कभी क्या कोई द्रविड़कुमार
पथिक बन देख गया यह रूप
सभी अपने को समझे भिन्न
परिधि को समझे पूर्ण विकास

दक्षिणी नृत्यों का लयताल
पूर्व पश्चिम में था पग लास
अल्प है ज्ञान—न छूता दूर
अरे बौने का वैभव चूर

मौन हो जायें सब विद्वान
आर्य्य उद्गम की करते खोज,
देखता हूँ मैं उज्ज्वल चित्र...
ज्योतिमय ज्ञान सूर्य्य की रश्मि
जगाती थी उल्लाह विभोर
कि 'वोल्गा,' 'बाल्कश' या 'ध्रुवदेश'
कहाँ से चरण उठा अज्ञात
देख...
पीड़ितों का यह संचित अर्थ
ज्ञान का अर्जित कोष अमोघ

मनुज की भाषा की पतवार
लिये खे चल यह सिंधु अगाध

समस्त वाक्य की प्रभा
विलीन है विलीन है
न मातृ केन्द्र शेष है
सु उग्दभा विलीन है
होगया भाषा में भी भेद
कि ईरानी, यूनानी और
पुरा संस्कृत की माता आज
खोगई है अतीत में भूल;

चल पड़े आर्य्य दिशाएँ भेद—
गवेषण की यह निर्मम खोज ?
परस्पर कलहों का आधिक्य ?
अरे या था 'मंगोल' प्रहार ?
'कैस्पियन' तट पर वह भुजदंड
कर उठे शत्रुशक्ति को खंड,
क्षुधा से व्याकुल हो कर त्रस्त
अन्न की करते करते खोज
चल उठी थी आर्यों की भीड़,
अग्नि से जलते गात प्रशुभ्र !
अभी भी रुंदे हुए पामीर
और 'खीबाशाद्वल' हैं साक्ष्य !

न जाने कितने अगणित वर्ष
गये होंगे अनजाने बीत
'कैल्ट', 'ट्यूटन' औ 'स्लाव', 'तुखार'

होगये रह रह कितने भेद...
कि जन का पारस्परिक सुहास
कि दम पू: का आवास
और मेथू का भर कर पात्र
ऊर्णा सज्जित वह स्निग्ध शरीर
विघूर्णित नयनों से मदमत्त
भुजाओं में आलिंगन चाह
नहीं धरते होंगे सब भूल ?

उधर तक्षण के घन का नाद
इधर शारद रजनी का लास,
रात ज्योत्स्ना के मृदुपट ओढ़
शैल शृंगों पर हँसती गूंज
और नीले नयनों में झांक
अप्सरसनारी लेती चूम;

चरागाहों के पर्वत गीत
पार कर खैबर का वह द्वार
सिंधु तट पथ थे शस्य गुंजार
स्वर्ग की आशा के संभार

अग्नि की जिह्वा साक्षी घोर
शपथ करते थे योद्धा वीर
समिति करती थीं गीतोच्चार
स्रुवा में भर कर घृत मदिराक्त
स्वर्ग-सैनिक कवि करते होम !

मैं देख रहा यह सप्त सिंधु
गुंजित कल्लोलित मुग्ध गीत
जीवन के यह पंथी दृढ़तर
प्राणों में मचती विकल टीस
थी विजय विजय की एक प्यास
उत्थान पतन का महालास
मैं सुनता रहा अवाक मूक
प्रतिध्वनित हो रहे थे पहाड़
शृंगों से टकराता निनाद
नभ में घहराता था अबाध—

"ऊँ
इन्द्र उल्लास
पुरुष जय
कनक आवरण दामिनि चमके
वज्र वीर जय जलधर गरजे
ऊँ
मानव के
अभिमान विकट जय
शीश सुसज्जित मुकुट दामिनी
पग प्रक्षालित गहन यामिनी
तिमिर भयंकर
भीषण पथ रे
ऊँ
दिवस् पितर योद्धा
पुरीष जय

मरुत और पर्जन्य शांतकर
द्यौस शांति दे
धरणि, कांति दे
ऋतु गंधर्व अप्सरा भोगी
सेना नायक !
जीवनपथ को

शत्रु नष्ट कर
ध्वंस भ्रंश कर
आलोकित कर
सुख दे
जय दे
ऊँ"

भर गया हृदय में वह निनाद
रे चौंक उठा मेरा प्रमाद
यह कौन गौर तन स्निग्ध वर्ण
दृढ़ वक्ष, भुजाओं में चिरबल,
निर्मल गभीर से नील नयन
हैं देख रहे गिरि पथ अविकल
यह पिंगल केश समीरण के
कर थाम झूमते बार बार
वह एक वृषभ की रज्जु लिये
दुहिता हँसती है लिये प्यार,
मृदु मेष चर्म से बद्ध वक्ष
का स्वर्णिम सा कोमल उभार
है झांक रहा धीरे धीरे

भरता अंगराई सा दुलार
वह दीर्घ वपुष, उन्नत ललाट
नासिका दिखाती गर्व भार...
कोई अपनी वह वेणु बजा
गति श्रम हरता है बार बार
गिरिपथ घाटी में आ खोया
तब हुई पितृ आज्ञा महान
बज उठा शृंग
भर शब्द रंग
लो तम का टूटा छिन्न पाश
कर उठे सभी समवेत गान—

(उषा)

"आलोकिनि जय
सुंदरि जय जय
तू अनुजा है सूर्य्य पुरुष की
वह जीवन दे तू प्रकाशिनी

हुआ जागरण शिरा शिरा में
शतदल झूम उठे सर सर में
गुंजित भ्रमर अनंदित उर रे
मधुर सृष्टि में नव विकास री
दीपित अधरा उज्ज्वल नयना
फैला पावन स्निग्ध प्यार री

शून्य तिमिर की गहन गुफा में
दिवस पुरुष की उल्का सुंदरि

स्वर्ण किरीटिनि
कलरव पगध्वनि
आलोकिनि जय
सुंदरि जय जय "

चल उठे चरण—
वृषभों की घंटाध्वनि हिलती
शैलों में करती है प्रतिध्वनि
आर्य्यों के धनु टंकार रहे
समवेत कर रहे हैं गायन—

(सूर्य्य)

"आलोक पुरुष
हे स्निग्ध वपुष
चेतन फैला दो जीवन में

आलोक तुरग की चंचल गति
किरणों की वल्गा में बंधित
हे अनल हृदय यह अन्न उगा
कर छिन्न तिमिर के पाश गलित

सरसिज के अधरों में पुलकित
खग कलरव में मुखरित गुंजित
मेघों में मंद्रा नर्त्तन ध्वनि

जागरण विजय
हे इन्द्रधनुष

परिवर्त्तन पट
चिरहीन कलुष
चेतन फैला दो जीवन में ”

अग्रजन्मा का ले अभिमान
सिंधुतट पर ऊर्जस्वित प्राण
सोम का करते हैं मिल पान,
धमनियों में मादकता व्याप्त
कड़कती करका को वह देख
वज्रधर का करते जय गान।

(गीत)

आह मेरे प्राण में
कितनी मनोहर साध छाई
यह प्रतीक्षा सी घड़ी
क्षण क्षण नया ही प्यार लाई

देखता हूँ लहरियाँ यह
उठ नया संघर्ष करतीं
और फेनिल हो अभागिन
मौन होकर मेल करतीं

प्राचीन तमिष् की सी भाषा
उसमें कहता है एक वृद्ध

उत्तेजित मेधा फेंक रहा
युवकों का उर कर मंत्रमुग्ध—

हम द्रविड़ अनादि अनंत अमर
युग युग से यह है अपनी भू
हमने श्रम से हैं शस्य उगा
यह ग्राम बसाये हैं रह कर

वह बर्बर आर्य्यों का भीषण
अभिमान गिराना ही होगा
शैलों सा वह अभिमान श्वेत
उसका करना ही है मर्दन

वह अमानुषिक पशु वृक समान
हैं स्त्री बालक को जला रहे
हैं दास बना कर हमें, किया
करते वह निष्ठुर सोमपान

जिसमें रहते हैं हम उदार
वह पृथ्वी अपनी द्रविड़ भूमि
लोलुप हत्यारों पर करना
होगा अब हम को गुरु प्रहार

कीकट भी हैं परतंत्र आज
हैं दस्यु भग्न अभिभूत मौन
अश्वत्थ नाग की शपथ करो
फिर महारुद्र की गरज आज

सामूहिक नृत्य किये तुमने
क्या भस्म उड़ेगी यहाँ आज
क्या करुणा पर तज कर नारी
औ' बाल वृद्ध, पशु बन अवाक
देखोगे मर्दित द्रविड़ जाति ?
क्या नहीं भुजा में शक्ति आज
हम नहीं कहीं से भी आये
ओ आदि पुरुष अब उठो जाग

बज उठा शंख,
झंकार उठी,
कंठों से फिर
जयकार उठी,

यह द्रविड़ सभ्य थे लिये शांति
थे ताम्रवर्ण गायक महान
थे आर्य्य क्रूर बर्बरहंता
खोलता नयन था मंद ज्ञान

पराजय का यह भीषण भार
हृदय रो ले क्षण भर तो हाय
प्रश्न कर आज समय से भग्न
अभागे ढूढ़ चुका क्या चिन्ह
समय से पूछ, न कर अभिमान

न जाने कितने प्राण अवाक
बहा कर रक्त भूमि पर त्रस्त
मनुज की बना कल्पना भार
विधाता की छाया का जाल

तिमिर में भटक भटक जो रुद्ध
ज्योति की आशा में ले प्यास
उसी की विद्युत पथ की शक्ति
तड़कते मेघों का भर रोष ?

मानवी आभा का फन चूर
पराजय छलना का अभिसार
विजय की नीली छलना दृप्त
बन गई सुपना, आधी नींद

एक कर से करता निर्माण
दूसरे से करता संहार
गरज कर उठता है इस ओर
विकल भय से छिपता उस ओर

आह यह नाटक का उन्माद
परस्पर करुणा बनी अभाव
मनुज में अविश्वास का नाद
गिराता ठोकर से सब प्यार

(गीत)

वैभव के अभिमान
समय-सिंधु-तट पर जर्जर सी

निर्बल स्तमित अल्प चट्टान
मेघाच्छन्न गगन में धूमिल
कंपित रोगी जीर्ण विहान
आह राह के कण कण में लय
खोया अहं तिमिर अज्ञान
एक अश्रु बन कर वह मस्ती
बिखर सोगई मूक अनाम
और बन कर जीवन की शक्ति
छीन कर उन द्रविड़ों की मुक्ति
छा गया आर्य्यों का वह लास,
आर्य्य केवल आर्य्यों का पाश
शनै: ग्रसता था यह भूभाग,
सिंधु से गंगा तक निर्बाध
गूंजती ऋचा प्रतिध्वनि डोल
बन गई जाति
बन गये वर्ण
देखता रहा 'सुदास'
बन गया गण का वह साम्राज्य;
'स्वात' की उपत्यका में दूर
हो रहा था समता का खेल,
अरे जब तक्षशिला में मग्न
ज्ञान का दीप जला निर्बंध,
यज्ञकुंडों में बलि दे स्फीत
कर उठा वैभव अट्टाहास
वही जो दलितों का अभिशाप
बना करता था हाहाकार,

और ऋषियों का घोष गभीर
दे उठा आज्ञा बन कर स्वामि—
'वही शाश्वत है जग का नियम
यं यं मनु अब्रवीत्...'
और स्वाहा का तुमुल विघोष
धूम बन नभ में फहरा दूर
स्पदनों में जीवन उत्साह
खड्ग में भरता था उन्माद

(गीत)

जीवन के इस चंचल पट पर
मानव है दृढ़ता की पुकार
जो कभी खोल देता आँखें
फिर कभी बंद करता प्रसार

हिमवान खड़ा था जब उन्नत
गाते थे आर्य्य पुनीत गीत
तब द्रविड़ों का आनंद भग्न
करता था व्याकुल चीत्कार

मैं पूछ रहा वह वर्णमान
धुलमिल कर क्यों है आज मौन
वह कहाँ अकेला मेधावी
निर्माता बनता अरे कौन

अणु अणु कर जो था सिंधु बना
भौतिक को ठुकरा गया जीत

'वह कौन प्रवाहण जैबलि था'
जो पुनर्जन्म का अंधकार—
दिखला कर छलता था सब को
अपने वर्गों का लिये स्वार्थ
यह धर्म बने गरिमावृत्त भी
क्यों जन समाज परवार आर्त्त ?

मधुवन के ओ भूले पंथी
किस चंचल चितवन में भूला
जो दहक उठा भीतर प्यासा
उस पर कितना सुख दुख भूला

परिमल से तुहिन कणों को ढंक
मधुकर को पागल कर पंथी
रे गल जायेगा यह विलास
फिर क्यों विषाद उर में बंदी

कुंकुम चंदन की सुरभि भरी
तू अगरु धूम सा मतवाला
काकली कौन गूंजी नभ में
भर भर कर यौवन का प्याला

अब कहाँ छिपाऊँ यह दुर्भर
यौवन की मुक्त कहानी है
मेघों में दामिनि सी चंचल
मतवाली टीस दिवानी है

भरदे यह प्यासा आज चषक
भरदे नयनों से उर सूना

माधवी सांझ का मृदु चुंबन
ज्योत्स्ना सा ताप भरे दूना

उन्मत्त उरोजों में माला
दब दब कर चूरन कर पगली
छलकी सी मांसल री तंद्रा
वैभव आलिंगन में मचली

प्यासे अधरों को आज मिला
बंदी भुजबंधन में प्रियतम
इस आलिंगन में तृप्ति अमर
स्वप्नों सा प्यार विसुध निरुपम

पर क्यों है मानव दुखी मौन
सम्राट् बना भी दीन विकल
क्या अरे देवता क्रोधित हैं
लो भाग्य बन गया फिर संबल

देवों की तृष्णा में मानव
था अपनेपन को वार चुका
पर बंधन में यह विद्रोही
कब रहा मौन अवरुद्ध रुका

वह 'वरुण दु:ख' हट चला और
'आनंद इन्द्र' का स्वाद हुआ
अपनेपन की सत्ता का बल
उस लोक शक्ति का बाध हुआ

सहस्रों वर्षों तक गतिलीन
तपोवन में करके तन क्षीण
दया करुणा की करके ज्योति
पुकारा था जब मग्न विभोर—
"तिमिर से चलो ज्योति की ओर
अनृत् से ऋत्
असत् से सत्
अरे विश्व मानव के ज्ञान
यही तो है तेरा कल्याण
जिसे तू कहता देव विलास
अरे वह भी हैं दास
ब्रह्म है सब से परे
वही है सब का केन्द्र प्रसार"

किंतु वन के उस पार
नगर में था दुर्दंभ,
कुलीनों का वह खड्ग
शूद्र पर चलता था निर्द्वंद्व,
ज्ञान की परिधि बनी थी घोर,
परस्पर अधिराजों का युद्ध,
अरे क्या देखूँ बोल ?
कहाँ था सुख ?
मानव का हर्ष ?

कपिल की विजय और वह हार
प्रकृति का कर्म
पुरुष का मर्म

किंतु ईश्वर के संमुख मौन
सिद्ध भी हुआ असिद्ध,
हँस उठा वेद पुरुष का गर्व—
छा गया आर्य्यों का वह खड्ग,
भयद सेनाओं की झंकार
रक्तधारा से लिखतीं कीर्त्ति
भर उठी शत्रु बधू की मांग।
और सामंतों की वह शक्ति
बन गई वर्ण भेद का पाश
चक्रवर्त्ती का वैभव लास
दिशाओं में भरता हुंकार।
देख
वह रघुकुल का पुरुषार्थ
सत्य कह कर अपने निर्माण
उसी में जीवन का संकोच
किया भौतिक में हो लाचार
और जाबालि
अनीश्वरवाद कि बस उपहास।
हृदय आकुल मत हो क्षण मौन
कि
मर्य्यादा पुरुषोत्तम राम
खो गया छाया सा चुपचाप
आज भी मंदिर में से नाद
आ रहा—'वह ईश्वर अवतार...'
किंतु आदर्शों का व्यवहार
बन गया करुणा का उपहार

कहाँ वह 'रावण' का अभिमान !
आह वह अस्थिशेष था लेश
देख कर जिसको राम गभीर
और धनु स्वयं उठा टंकार
गा उठा 'वाल्मीकि' दुख आर्त्त
गा उठा पूरा भारतवर्ष
किंतु वह छिन्न हो गये भाव...

हाय नल के सूखे पगचिह्न
कभी जो दमयंती के अश्रु
सींचते चलते थे बलि पूर्ण,

याद है बोल 'अगस्त्य' ?
आर्य्य सत्यों का लेकर ज्ञान
गया लोपामुद्रा के साथ
झुकाता था सिर बीहड़ 'विन्ध्य'
शक्ति की उल्का को ले हाथ
चल उठा ज्योतित करने विश्व...

न हो पागल मेरे मस्तिष्क
कहाँ तक देखेगा तू बोल ?
कौन सा अणु है भू पर आज
नहीं है जिसकी कथा अमोल ?
कौन सा मानव था जिसका कि
न था छोटा जीवन इतिहास ?
विश्व का दुख न उठा था काँप
कौन सी थी वह ऐसी श्वास !

नींद से भी सुपना अनमोल
स्वप्न से भी जीवन का भार
कब नहीं सुख का बनने केन्द्र
कर नहीं पाया मानव प्यार !

अरे अवतारों का कर सृजन
क्षणिक बिजली सा किये प्रकाश
ऊपरी पट को बदल अपूर
पा सका कब जीवन सुख लास

आह मानव की प्यास !
सिंधु के वक्षस्थल में डूब
बीन लाया मोती तू दीप्त
गहन वन में गाता तू गीत
कर उठा था मेघों को स्फीत

विजन शैलों के उन्नत शृंग
आंक आया पैरों से दृप्त
नगर का वैभव था उन्मत्त
किंतु तू तो रह गया अतृप्त

दार्शनिक आये कर घन नाद
किंतु उस काल लहर में झूम
बन गये लयमय गीत.....

आज मैं देख रहा हूँ मौन
युगांतर से मानवता त्रस्त
'द्रौपदी' सी लुटतीं असहाय,
शक्तिशाली 'पांडव' हो मूक

बद्ध हैं मूर्ख पाश में बद्ध
अंध है स्वार्थ भरा वह न्याय
और 'दुःशासन' करते गरज
चीर हरने का निष्ठुर काम,
धर्म की चाह रहा जो जीत
'कृष्ण' भी आदर्शों में लीन,
साम्य का देकर भी संदेश
न दे पाया मानव की मुक्ति,
मुक्ति तो थी ईश्वर सान्निध्य ?
हंत ! यह क्या केवल उन्माद !

सहस्रों वर्षों के पथ बीच
चमकते जलते जगमग दीप
नहीं बुझ पाये अब तक देख
सुखों का अन्वेषण कर घोर
हो गये अमर हृदय के बीच
और गति के पथ पर जो बदल
जल उठे बार बार रे दीप
आज वह धुंधले होकर दूर
कांपते हैं निर्बल अभिशप्त,
कहीं पर कोई बुझ कर धूम
छोड़ कर—लेते हैं निश्वास,
व्यक्ति का बल वैभव अभिमान
खो रहा—काल बना हिमवान ।

सत्य अब भी चलता है नम्र.....
किंतु वे पुरुष महान—
समय के पथ पर पथिक अनेक

दे गये अपना मृदु पाथेय
रह गये अरे विचार—
मनुज की सामाजिक बन श्रेणि
महागति के लघु छंद...
आह संस्कृति का निरुपम कोष
खोल कर देख रहा हूँ आज
कौन सा वह पथ और विचार
कौन सा था ऐसा अभ्यास
कर्म, तप, दान, योग, वन, प्रांत
नहीं जो आया मानव खोज

लौटती हैं फिर लहरें देख
ज्वार अब उतर चला है मंद
चढ़े थे जो बोहित इस पार
गिर रहे हैं धारा के साथ
नहीं लौटेंगे वह अवतार
न कर दुख आज अरे अभिशप्त
युगों के निरवधि मौन अतृप्त...
गा चुका गीत, रो उठा हाय
खेलता, हँसता सभी उपाय
कर चुका किंतु निराश,
पुरातनता का लास
बन गया क्यों फिर पाश...

टूटता है फिर जाला आज
और क्षण भर लेता हूँ श्वास
दिशा औ' काल भेद कर अरे
देख आया मैं यह क्या लास ?

आह मानव इतिहास !
भूत के अंधकार में बिकल
अल्प विद्युत उपहास !
एक लघु लोल लहर का वेग
और सूना उच्छ्वास !

सर्ग—११

आख्यान :

मेधावी व्याकुल हो उठा। तब समय में से प्रतिध्वनि आने लगी और उसने देखा...

"कौन हो तुम उन्मत्त विभोर
दुखी होकर करते संघर्ष
युगांतर से पथ पर चल किंतु
रुद्ध हो जाता विकल अमर्ष ?"

"अरे मैं हूँ मानव, अभिराम
चला था स्वप्नों का ले भार
किंतु अब देख रहा हूँ श्रांत
नहीं मिलता मुझको सुखसार

पहाड़ों, मैदानों, नभ, सिंधु
सभी को आया हूँ मैं छान,
समय का साथी बढ़ता नित्य
और छाया सा होता म्लान

देख छायाएं कैसी घोर
घेरती हैं मुझ को दिन रात
बजेगी केवल सुख की बीन
कौन सा होगा विमल प्रभात ?

नहीं मैं ले पाया वह श्वास
मनुज का हो कल्याण प्रदीप्त
अभी तक तो जो देते ज्योति
श्वास से बुझते वह ही दीप

थक गये पल भर को यह पांव
किंतु तत्पर फिर उठने आज
उठा लेता हूँ मैं फिर शीश
नम्र हो जाता जो कर लाज

अरे यह निराकार जो रूप
सतत परिवर्त्तन की गति देख
विश्व पर दिखता है चलमान
मनुज के जीवन पर कर रेख

बदल जाते हैं घर के चित्र
बदल जाते हैं स्वयं विचार
विचारों पर केंद्रित हो भाव
बनाते सामाजिक आकार

विचारों की बेला का अंत
मनुज के जीवन का अभ्यास
कसौटी वह हीरक की घोर
चलाता स्वयं मथित वह पाश

आह मैं मानव हूँ अभिभूत
विजय का करता हूँ अभिमान
रात का तम जाता क्यों भूल
जभी आता है दीप्त विहान

उड़ सका है यह मनुज -विहंग
विचारों के जब आये पंख
किंतु वह गिर जाते हैं स्वयं
बदलती ऋतु के होकर अंग

अरे यह सामाजिक उल्लास
नहीं रुक पाया अब तक देख
प्राण का कंपन रुका न किंतु
निराशा कर न सकी व्यतिरेक

दूर तक भू के उर पर देख
छोड़ आया हूँ मैं पगचिह्न
सतत चलता हूँ मैं निर्बोध
ध्वंस, निर्माण; आह कर खिन्न !"

हो गया पंथी कह कर मौन
और बोला फिर समय महान—
भूमि नभ ज्यों अणु अणु से एक
साथ ही उठता था यह गान—

"अरे कवि यह मानव है अल्प
व्यक्ति में कर अपना संकोच
छल रहा अपनी गति का लास
और फिर फिर करता है रोष।

प्रेम की करता है यह खोज
घृणा आपस में करती विद्ध

स्वार्थ की कारा में अभिशप्त
चाहता हो जाये उन्मुक्त

मनुज की मेधा की वह भूख
अरे वह असंतोष का भार
भिन्न उससे भौतिक के दुख
मिटा सकता है जिस को प्यार

प्यार—केवल हो विकल विचार
कल्पना के पंजों की ढील
साम्य के बिना कभी भी हाय
नहीं ही गा सकता सुखगीत

साम्य—मानव की तृष्णा घोर
एक ही विंदु मिटाये आज
बिंदु हर उर का, सिंधु समूह
किंतु क्या मेधा का उपहार ?

साम्य—श्रम का—जीवन का सत्य
यहीं से मानव का कल्याण
एक जग जिसमें दुख हो स्वप्न
चूर हो वर्गों का अभिमान

अरे कहना तो है आसान
तभी बहती छायाएं म्लान
विचारों को कर जीवनदान
कर सकेगा मानव सुखगान

अरे भौतिक ही है वह नींव
हमारा यह समाज ही भूमि

कि जिस पर नर्त्तन कर अभिराम
प्रगति के स्वर लेंगे फिर झूम

सुनाऊं कवि मैं तुमको एक
कहानी पहले की अनजान
इसी मानव की जो अनबूझ
आज भी व्याकुल दुखमय गान—"

"सुनाओ अरे सुनाओ आज
बनूंगा संजय मैं हे समय
वृद्ध अंधा दर्पित संसार
सुने मुझसे कर्त्तव्य उदास

लड़ रहे भाई भाई आज
स्वार्थ के पीछे यह संग्राम
एक बर्बरता का है नाद
दूसरा सत्ता का उपनाम

किस लिये योग्य द्रोण से व्यक्ति
दे रहे साथ विकल नतमाथ
उन्हीं का जो मानव का हर्ष
मिटाने उठा रहे करवाल—"

मुस्कराता सा लगा विराट
समय वह क्षण भर चिंतामग्न
और फिर बोल उठा गंभीर
कर उठा भूत तिमिर को भग्न :

"सृष्टि के अणु अणु की गति देख
देखता चलता सब के साथ
अल्प पृथ्वी के इस लघु प्राणि
वर्ग का बतलाऊं इतिहास

हजारों वर्षों का यह खेल
नहीं मेरे पग भर की राह
सुनो जिस गति से होकर आर्त्त
मनुज भरता है सूनी आह

जिसे यह देता अगन महत्त्व
अरे मेरे संमुख वह तुच्छ
किंतु सापेक्ष मनुज की दृष्टि
उसी में दिखलाऊं यह चित्र—

(गीत)

आह अभागिन यह मानवता
विकलाशा रह रह रोती है
आंसू में सुपने बिंबित कर
स्मृतियों की माला पोती है

विश्वासों का गगन उठा कर
अपनी पृथ्वी पर असाम्य कर
अपने ही कर से निर्माणित
भीषण बोझे को ढोती है

भेद बुद्धि का जाल बिछाये
छलना का अभिमान जगाये

आपस के संघर्षों में पड़
ज्योति किरन पाकर खोती है

अरे सहस्रों पर दो का सुख
जीवन तज कर देख मृत्यु मुख
युग युग से यों ही यह छलना
गतिमय की कारा होती है

प्रासादों के पाषाणों में
रक्त सने धूमिल गानों में
बुझते निश्वासों का धूंआ
देख दीप रह रह जोती है

साम्राज्यों का तिमिर छिन्न कर
दलित विमर्दित जनता उठ कर
अंतर्बाहर के कलुषों को
रक्त और मन से धोती है

आह दार्शनिक कवि का गायन
साम्य सत्य का किये प्रदर्शन
परंपरा की ममता आने
वालों में संस्कृति बोती है

क्यों तू मथता भूतबिंदु को
तज कर 'अब' के विकल सिंधु को
आह भूत की गर्विणि तृष्णा
केवल खंडहर सी सोती है

मन गभीर है अतल उदधि सा
जीवन लंगर इस निरवधि का
आँखों से जग आँसू ढारे
पानी बिन तेरा मोती है

व्यक्ति का सामाजिक निर्माण
बनेगा कब जीवन वरदान

सहस्रों वर्षों के भी पूर्व
ज्ञान की मृदु मर्मर की लोल—
शक्ति जब प्राची में निज आँख
खोलती चीनी में कर लास

और उत्तर में आर्य्य विकास
हो रहा था क्रम क्रम कर शनै :,
मिश्र के मैदानों के बीच
नील के गहरे जल के तीर
देखता था कोई चुपचाप
गगन के तारों का उन्माद
सो रहे थे अब थक कर खेत
स्वर्ण कलमों का किये प्रसार
सोचता था मिश्री अभिभूत
कौन करता मेघों में शोर
मृत्यु के अंचल में भी सुप्त
किस लिये जीवन करता लास
आह क्यों नील नदी का वेग
उफन प्लावित करता है कूल

पश्चिमी शैलों के उस पार
चली जाती आत्मा क्यों दूर
ओसिरिस आइसिस का वह दास
कर उठा महामृत्यु को प्यार
और जीवन का भूल महत्त्व
कर उठा मृतकों पर अभिमान

आज मृत्यु की नील मधुरिमा
बादल बन बन कर छाती है
वज्र घोष कर सतत चेतना
पल भर हँस कर विलमाती है

चित्र बनाता है वह रह रह
यह विचार है, ज्ञान न खोये
किंतु अमावे मानव तेरी
तृष्णा हँसे—नहीं तू रोये ?

लो मिश्री अपने मृतकों की
'ममी' बना कर गाड़ रहा है
जीवन यहीं समाप्त न होगा
देव दंड ललकार रहा है

अरे हमें फिर जाना होगा
जब तक न्याय अवधि ना आये
तब तक कब्रों में यह मानव
अपने जीवन को दुहराये

'सिंदबाद' की यात्रा सुन कर
जीवित जिसमें गाड़ दिये थे

कवि ! तुम सोच सकोगे यह भी
मानव ने यह खेल किये थे

झंकृति करते तार न छूना
कहीं टूट जाये न गूंज यह
मानव भी तो बरबत ही है
मृत्यु उंगलियां चलीं झूम यह

अरे देख कृषकों पर कैसी
बहिर्शक्ति आघात कर उठी
यही यही हाँ यही बात थी
राजा का निर्माण कर उठी

महा शक्ति है देख ओसिरिस
की जो नील लहर बहती है
और फ़राओ की कठोरतम
आज्ञा अब सब पर चलती है

गये सहस्रों वर्ष हुमकते
हाइक्सस के पगतल लुंठित हो
घायल होकर मिश्र तड़पता
करता था चीत्कार विकल हो

अरे देख हीब्रू जो तब से
महाघृणा के पात्र बन गये—
बर्बर स्वामी को दिलवाने
कर ; जनता पर पुलक जम गये

देख हजारों ही गुलाम वह
फिर से हैं विद्रोह कर उठे
मिश्र भूमि पर स्वतंत्रता के
आदिम स्वर अभिमान कर उठे

और पिरैमिड शीश उठातीं
धीरे धीरे गगन चूमतीं
एक एक पत्थर की छाया
दासों को जो किलक रूंदतीं

मृतकों का परलोक बनाने
जीवित मानव पशु बलि देकर
सम्राटों ने खेल किये थे
आह अमरता छलना लेकर

सूर्य्य चिन्ह को देख देख कर
'हेतशेपसूत' महासाम्राज्ञी
अस द्वार से झांक देखती
महापूर्वजों की वैभवश्री

आह मिश्र इस एक विंदु पर
कितने खेल न तूने वारे
रत्नों की विजयों पर मोहित
तूने मन के वेरण हारे

वह 'असीरियन' जीत सके यदि
वह साम्राज्यों का अभिमानी

उपनिवेश हो उतर चला था
महानील का निर्बल पानी

कभी स्वतंत्र गरजता उठता
कभी दास सा आहें भरता
ईरानी, यूनानी जाने
किस किसका अभिमान उमड़ता

किंतु भारवाही समीर यह
जो शैलों में गुंजन करता
कब मानव के मन की ज्वाला
पर शीतलता लेपन करता

मैं पंथी हूँ कभी न रुकता
महानृत्य करता हूँ क्षण क्षण
नूतनता का महासृजन कर
ध्वंस किया करता हूँ उन्मन

अरे देख पहचान वृद्ध वह
कौन भक्ति के गीत लिख रहा
वह दाऊद मग्न बेसुध सा
अपनेपन को आज खो रहा

सुलेमान विद्वान न्याय कर
अपनी सत्ता निभा रहा है
धूलि धूलि है मुकुट शीश का
मानव को व्याकुल करता है

एक फूंक सा लहर लहर कर
दजला औ' फ़रात की सुंदर
उपत्यका का नाद खो गया
सूनापन चलता है मंथर

वह हरियाली वह मृदु उपवन
पाषाणों में सूख सूख कर
अब मरु और शैल के मानव
का संघर्षन सुनते थक कर

चल, नख लेखक वह सुमेर के
पर्वतवासी मैदानों में
बना रहे मीनार ढालमय
वह बाबेल की लयतानों में

मैसोपोटामिया बुलाता
जहाँ सुमेर शक्ति चलती है
संध्या के बहते रंगों सी
उठने वाली गिर मिटती है

वह अकेडियन, वह सेमेटिक
अमोराइट्स का गर्व कहाँ है ?
हम्मूरब्बी के प्रासादों
का वह बैबीलॉन कहाँ है ?

बर्बर ध्वंस शिखा फहराते
वह हिताईत अब नहीं रहे हैं
आह असुर की प्रजा बनाते—
वहीं निनैवे, दूर बहे हैं

नेबूचैद्नेज़ार न बोला
विकल चैल्डियन, पल भर हँस लूँ
कल की बात रहस्य भरी है
कवि ! तू रो ले मैं तो बह लूँ ।

कौन ? कौन ? मूसा की कहता
आह जिहोवा, एक ईश की
सत्ता का प्रतिपादक, वह लख !
रक्षा करता निजी जाति की

दलितो शोषित उत्पीड़ित की
हीब्रू एक ज्वलंत कथा है
जिसे न सुख मिल सका कभी भी
जिसका अपना घर न रहा है

अभी लाल सागर के तल पर
नावों पर हैं चिह्न शिनों के
और सिनाई पर्वत पर के
तूर कंपाते हृदय सबों के

जेरूसलम भूमि ईश्वर की ?
हा हा कब तक छलना होगी ?
मानवता ! जो तुम न पा सकीं
वह अमरत्व मुझे क्या दोगी ?

अभी उदधि पर फहर रहे हैं
फोनीशियन गीत कंपित से
व्यापारी के हृदय कहाँ था
सुख नापा करता था धन से

जिनकी मेधा ने लिपि शोधी
उनके नाविक कन्याओं के
आलिंगन में अमर रहे कब ?
भारी दुख चंचल गानों के!

होमर ! आग लगी थी कैसी
महा ट्रौय पर गीत रचे थे
कवि ! मैं पर्त्त हटाता जाता
परिवर्त्तन ने जो डाले थे

एक एजियन नाविक सत्ता
जिस को यूनानी छलते थे
अरे आर्य्य घुस आये थे अब
नवयुग के संभार उठे थे

क्रीट ध्वस्त था, यह यूनानी
उन महलों का शीश गिराते···"

"ठहरो ठहरो" मैं चिल्लाया,
"इतने शीघ्र कहे जाते हो
मैं कैसे समझूंगा यह सब
जो तुम बढ़ते ही जाते हो!"

हँसा समय जिसके हँसते ही
क्षण भर कंपित से थे तारा
तृण सी भूमि सलज हिलती थी
सिहर उठा मेरा मन हारा

बोला "कवि तुम क्या कहते हो!
वर्ष सहस्रों पल भर मेरे
सृष्टि आयु की बात कहूँ तो
मुंद जायेंगे नयन तुम्हारे

अरे खेल था, एक खेल था
उठना, गिरना, भूख मिटाना
और ज्ञान की धीरे धीरे
बेला आगे और बढ़ाना

अभी किया ही क्या मानव ने
अब तक लिपि निर्माण किया है
घर प्रासाद बनाये उसने
शस्य उगाये पान किया है

धातु बनाई, वस्तु बनाई
पोत बनाये, शस्य उगाये
अधिकारों के असंतोष में
अपने संचित कोष लुटाये

तारों की गति को आँका है
नारी को दासी ठहराया
और ग़ुलामी में लाखों को
वर्गों के हित है भरमाया

कभी कभी कोई ज्ञानी आ
उन्हें राह दिखला देता था
किंतु मूर्ख मानव प्राचीनों
के नियमों में ही खेता था

टकराता था चट्टानों से
जो नवजल में मिल जाती थीं
अरे जाति की जाति युद्ध कर
कुछ वर्षों में मिट जाती थीं"

"नहीं नहीं मानव के उर का
तुम मुझको इतिहास बताओ
वर्गों का यह दास बना जो
व्यक्ति रूप में उसको गाओ"

बोला समय, "प्रकृति से डरता
यह ईश्वर को बना चुका है
अपने भौतिक व्यवहारों से
सामंजस्य बनाने उसका
उसी रूप को बदल बदल कर
नये वस्त्र में देख रहा है,
भय से शांति राह पर आता
व्यक्ति रूप में निर्बल प्राणी
सामाजिकता भूल बनाता
ईश्वर की छाया मीनारें..

मैं तो नित्य नये ही ईश्वर
बनते गढ़ते देख रहा हूँ
कुछ विद्रोही कुछ अनुरागी
यह ही घर्षण देख रहा हूँ

देख हीभ्र जो पीड़ित हैं
समझे ईश्वर ही क्रोधित है

क्योंकि आचरण उनका कलुषित
जिस पर पाप भार पोषित है
'वह ईश्वर के चुने पात्र हैं-'
यह ही मन में सोच रहे हैं
अगन जातियों से क्लेशित वह
देशहीन से घूम रहे हैं
विश्वासों की रज्जु थाम कर
अब तक जग में अलग चल रहे
बर्बरता की इन चोटों से
अपने पर अभिमान कर रहे
ईश्वर केवल 'एक हमारा'
पीड़ित होकर घृणा कर रहे,
कँपा दिये थे यूनानी भी
विद्रोहों के फूत्कारों से
किंतु दब गये विकल मथित से
फिर बर्बरता के वारों से

जाति? जाति की अपनी सत्ता
अपनेपन का गर्व भयंकर
इन्हीं मनुष्यों ने फैलाया
जो अब तक बाधा की खाई,
किंतु हज़ारों वर्षों बीते
ज्ञान दीप अब तक चलता है
यह जो मिश्री आदि जाग कर
आज सो गये अंधकार में
उनका ज्ञान अल्प था जिससे
परिधि बनी जो राह बनाई

सतत परिश्रम का फल पाकर
मानव अपनी उन्नति करता
जो रहता है वही सत्य है
वैसे तो सब कुछ ही मिटता

पर क्या मिट जाने के भय से
मानव का निर्माण रुका है
संघर्षों का रूप निरंतर
पके पेड़ सा नम्र झुका है

धरिणी के उर पर हँसता वह
कोमल स्वप्नों की परिभाषा
चिर वात्सल्य लहर में भींगा
जाग्रत करता सुंदर आशा

प्रेम प्रेम की लालिम ऊष्मा
तीर बनी कसका करती थी
राजकुमारों के यौवन में
तृष्णाएं संसृति रचती थीं

आह नयन वे मोती वाले
नीले कमलों से हिलते थे
रूप, रूप की नग्न शिखायें
सुंदरियों के पग चलते थे

वह नारी जो रही सदा से
पुरुषों की उस स्वर्ण म्यान में
लचक लपलपाती कुचक्र सी
अपने तृष्णा जाल मान में

जब साम्राज्य ढुलक उठते थे
महा दार्शनिक मुस्काते थे
जिन्हें जीतने को नारी के
अंतर्बाहर बिछ जाते थे

अरे पहाड़ों की छाया में
मानव ने जो रूप विलोका
उसकी प्रतिछवि पा जाने को
कितनी रातें रह रह रोया

वह जो निशि में सनन समीरण
की कोमल रुनझुन सुनता था
ध्वनि निकली उसके होठों से
जिससे मन को सुख मिलता था

सामूहिक जो लयमय गुंजन
उन कंठों से गूंज उठा था
वही एक दिन भाषा बन कर
वस्तुविश्व पर झूम उठा था

किंतु क्या कहूँ श्रम की बेला
अंतर्साम्य लिये उस ध्वनि से
सामाजिक संबंधों की छवि
बढ़ती थी जैसे प्रतिध्वनि रे

उस के जो विचार चलते थे
जड़ में थी निर्माण शक्ति ही
कार्य्य और कारण की उसकी
कभी बन गई केन्द्र रुद्धि की

वस्तु रूप से जो अंतस का
सामंजस्य ढूंढता फिरता
लो गीतों की चिर चेतनता
अब भीतर से रूप किलकता

नभ में ऊषा नर्त्तित, मन में
नवालोक सा आलोड़ित था
संध्या के स्वर में उदास हो
रंग--विरंगा सा व्याकुल था

और महास्मृति जीवन रखने
अंतर में सब कुछ पा जाने
आनंदित हो मग्न विभोरी
तन मन की लय में रम जाने
नृत्य हो रहा था सामूहिक
जिसमें भूल भूल कर निज को
आत्मशांति का मृदु प्रकाश सा
झूम रहा था अब हर्षित हो

आदि पुरुष जो सरल चित्त था
द्वेष क्रोध से कहीं दूर था
उसका सामूहिक स्वरूप भी
साम्यशक्ति का प्रथम रूप था

सब उपजाते, सब ही खाते
गीत गुंजाते, नर्त्तन करते
नर नारी के संग प्रेम की
मुक्त धार में हँस हँस बहते

किंतु प्रकृति से निर्बल प्राणी
चाह रहे सब को आंकेंगे
साधनहीन, समझ अपने को
आदि अंत कैसे झांकेंगे

हँस पहाड़ प्रतिध्वनि करते थे
नदियां गीत रचाती जातीं
किस की पगध्वनि कोमल कोमल
बन कर कानन माधुरि गातीं

कवि की अंतर्दृष्टि जग उठी
जो सब कुछ का एक रूप था
मानव की भावना विरल का
एक संगठन— प्राण कूप था

कौन ? सोचता है क्या कोई
वह मानव कुछ और रहे थे ?
नहीं ! परिधि के भ्रमपाशों में
अंत न पाते से बहते थे

अरे व्यक्ति की जीवित रहने
की इच्छा ही शक्ति बन गई
जिस में वह सापेक्ष गीत की
लय—विकास की मुक्ति बन गई

जादू का सा खेल प्रकृति जो
सतत कर रही समझ न उस को
स्थायी रूप बना ईश्वर का
चला ढूंढने अपने जग को

पर परिवर्त्तनशील विश्व में
केन्द्र प्रगति की बाधा बनता
मानव को दुख व्यथा दे रहा
अंध तिमिर में फेंक हँस रहा

कार्य्य और कारण की गति को
स्थायी कह कर वह न चल सका
उसकी बनी मूर्त्ति सुखदायी
से अब भयकर नाद गरजता

जन्म हर्ष था मृत्यु दुःख थी
पर वह तो संकोच बन गया
आते जातों की पगध्वनि का
नाद प्रहारों से भीषण था

पूर्व पुरुष से भय करता वह
उन्हें देवता कह डरता था
एक ओर निर्माण प्रगति थी
इधर रुकावट का घेरा था

अपने भोजन पर निर्भर वह
नहीं प्रकृति को जीत सका था
इसी लिये मेघों नदियों के
संमुख उसका शीश झुका था

कौन कौन है जो देता है
और क्रुद्ध हो छीना करता
नरबलि का भीषण तांडव जब
जन में धीरे धीरे बढ़ता

पशुओं का मानवीकरण भी
अपनी छाया डाल रहा है
मृत्यु रहस्य बनी थी दुर्गम
जिसमें अब वह उलझ रहा है

मातृरुप में द्विगुण चेतना
जन के बाहर क्रियां ढूंढती
जन का जन से घर्षण होता
मानव में विजयाशा जगती

धीरे धीरे मनुज पालने
लगा अनेकों पशु अब मिल कर
और चरागाहों पर मस्ती
नर नारी की जागी खिल कर

और शस्य फिर उगे कार्य्य का
बोझ बढ़ गया था नारी पर
स्नेह और वात्सल्य प्रभा से
घर का भार पड़ा नारी पर

और मनुज की शक्ति बढ़ रही
महा प्रकृति से घर्षण करती
व्यक्ति स्नेह की छाया अपने
उस समूह में लय सी बहती

नारी काम शस्य में करती
मातृरूप में उत्पादक जो
धरती माता की छाया है
अन्न दिलायेगी वह सबको

जननी की उत्पादक जाग्रति
थी वास्तव में आदि चेतना
वही बनाती थी जिसको फिर
पुरुष दिखाते श्रमिक भावना

किंतु ज्ञात जब हुआ पुरुष को
स्वयं वीर्य्य ही एक बीज है
स्त्री तो केवल एक भूमि है
जिस में बोता पुरुष वीर है

नारी नर की भोग्य बन गई,
यौन योग की अमल मुक्ति भी
कलुषित बंधों में सड़ सड़ कर
उठा चली दुर्गंध क्रुद्ध सी

एक ओर जननी कह छलता
उधर बना देता था वेश्या
बंदिनि के आंसू ने बह कर
खींचा था सतीत्व का घेरा

अगणित मानव हुए मिट गये
किसका शोक कर रहा है तू
नई लहर में नई रोर थी
किसका मोह कर रहा है तू

भाव जगत की अगत ग्रंथियां
युग युग की रस्सी से बनतीं
कहीं खुल गईं गति के पथ पर
कोई रह रह खिचतीं बढ़तीं

एक दूसरे से बंधित हो
ज्यों मृणाल का तार तार रे
मानव चला राह पर अपनी
गिर गिर कर भी बार बार रे

धर्म, काव्य, अधिकार सभी तो
मैंने तेरे संमुख खोले
जन समाज की मुक्ति छिनी क्यों
मानव के दुख कैसे डोले

किंतु पृष्ठ यह पहला ही था
अब वह आर्य्य बढ़े आते हैं
वर्ष सहस्रों की गति उनकी
वह प्रत्येक दिशा छाते हैं

नये भाव, नूतन विचार अब
इन प्राचीनों से टकराते
किंतु अभागों की छलना है
जो वैसे ही नृत्य रचाते..."

चिल्लाया मैं बरबस व्याकुल
"मेरा मन पागल होता है
पल भर हँस उठता है उन्मन
क्षण भर क्यों निर्बल रोता है

चुप हो जा ओ समय निठुर तू
मैं विश्रांत हुआ हूँ कैसा
जाल नयन से दूर हो रहे
किंतु हृदय क्यों भारी ऐसा !

अरे न जाने यह अपूर्णता
जो प्राचीनों के दुख सी थी
मेरे मन में लास कर उठी
ज्यों पावस की रातें भींगी

ज्ञानमार्ग पर चलने वाली
आशा की यह ही चेतनता
मुझ से कहती—व्यर्थ न कर तू
अनुमानों की घोर मूर्खता

फिर क्यों भारी है मेरा मन
कांप रही ज्यों ज्योति किरन भी
समय मौन हो मत कह कुछ तू
सुलझन देता या उलझन ही"

एक ठहाका गूंजा अणु अणु
बन कर कांप उठे थे पर्वत
सागर में तूफ़ान श्वास से
डोल उठे चुपचाप हहर कर

बोला समय, "व्यथित क्यों है कवि
मौन ? मौन मैं कभी न होता
मेरा गीत अमर रागिणि है
सुन न सकेगा जिसको सोता

करता जो संघर्ष प्रकृति से
वह आपस में जो लड़ता है
अंतर्बाहर की अशांति से
तुझ में भी भय घर करता है

मैं तो कभी नहीं रुकता हूँ,
जो मानव को सुख देते हैं
मेरे अंचल पर प्रकाश से
किरन बने चमका करते हैं

तुमने कहा तभी बोला मैं
और नहीं तो मुझको क्या थी ?
मानव अपना रूप संभाले
ऐसा कर प्रयत्न मेधावी !"

मौन हो गया समय न बोला
फिर मेरे विचार से कुछ भी
सुनता हूँ वह नाद चल रहा
सतत अथक सा मुक्त अरुक ही

एक अल्प मैं सोच रहा हूँ
सब कुछ ही तो जान सकूँगा
जिससे मानव का जग बदले
ऐसा गाना गा न सकूंगा ?

सर्ग–१२

आख्यान :

मानव का इतिहास करवटें ले रहा था...

कँप उठा व्योम का गहन चक्र
लो डूब गया यह विकल विश्व
मैं अंधकार में देख उठा
कितने ही अगनित महाचित्र

वह महानृत्य सा खेल उठा
मेरे नयनों का नवल रूप
मेरे अपनेपन की तृष्णा
क्षण भर खोई सी मौन हूक

वह जाति राष्ट्र औ' विशद देश
की रेखाएं हट गईं दूर
मानव की गतिविधि का विलास
प्राणों में बोला लिये भूख

मैं रहा देखता हो विस्मित
होठों पर हिलती अमर प्यास
मिट्टी थी मेरे हाथों में
मैं छोड़ रहा था मुग्ध श्वास

तम गहन पसारे था अंचल
निर्बंध अपरिमित विगत सार

जो अंतराल में कांप उठी
यह कैसी करुणामय पुकार

अंतस् को छूती आग बनी
धूंए सी उठती घुमड़ लीक
यह व्यक्ति रूप की चेतनता
भरती युग युग की एक टीस

यह किसकी वाहिनि चलती है
अंततम में ले विजय प्यास
दुर्दांत घोष से गगन भरा
रक्तिम है खड्गों का हुलास

वह वीर सिकंदर शक्ति केन्द्र
कर चूर चूर अगणित प्रदेश
विजय-श्री से भारालस सा
बढ़ रहा हृदय में लिये वेग

पृथ्वी है थर थर कांप रही
हैं खड्ग फलक जाज्वल्यमान
कितनी वधुओं के आंसू में
लिखते हैं अपना दुरभिमान

नयनों में स्वप्न अगाध लिये
संस्कृति पोषक का लिये 'माद
दारा की प्रखर पराजय पर
विदलित करता मरु जल पहाड़

'सिल्यूकस यह है आर्य्यभूमि
है महादार्शनिक का विकास

यह भी युग युग से गर्वोन्नत
कर रही ज्ञान से है विलास

डायोजनीस की बात अभी
भूला हूँ मैं न अरे विराट
ऐसे ही योगी बसते हैं
इस महाभूमि में देख आज

मैं लौट अरस्तू से कह दूँ
ले आया हूँ वह ज्ञानकोष,
पर विजयी होकर लौटूंगा।'
हँस उठा सिकंदर भरे मोह

'तुम कौन पराजय से भींगे
अब भी गर्वोन्नत क्यों बोलो
कैसा व्यवहार करूँ तुमसे
क्या नहीं मृत्यु का भय बोलो ?'

हँस उठा वेग से पुरु प्रवीर
'अधिराजों का यह हुआ मेल
मैं नहीं मृत्यु से डरता हूँ
वह तो जीवन का एक खेल'

सुन रहा आज यूनान देश
भारत की गरिमा का प्रसार
मिल गईं महानदियां दोनों
कल्लोल कर उठे फिर विचार

मैं देख रहा कितने अगणित
प्राणों की छाया गई बीत

फिर भी न कभी भी खोया रे
मानव की तृष्णा का सँगीत

विस्तृत भू पर चल पड़ी एक
वह वाहिनि जैसे एक लीक
आई, मिल कर फिर लौट गई
विनिमय को करके एक जीत

(गीत)

याद करे यह जीवन किस की
ध्येय बने सब चूर हुए हैं
अगम उदधि की लहर लहर से
भिन्न तीर की राशि छुए हैं

पिथागोर की 'आकृति' ही क्या
मानव को संतोष दे सकी
एलियातिक का भ्रम जब फैला
ज्ञानज्योति क्या वहीं रुक सकी ?

क्या विष का प्याला पीकर ही
तृषा कभी खोई मानव की
आह दास यह विकल वस्तु का
सोच रहा है क्यों अनंत की ?

इधर वेद का अनुगामी वह
नचिकेता क्या है रहस्य में
कहाँ आज चार्वाक ध्वंस कर
अपनेपन की विकल प्यास में

और लिये परिवर्त्तन चंचल
क्षण क्षण सृष्टि बदलती जाती
गौतम का संदेश शांति का,
गुंज विहारों से ध्वनि आती

वह करुणा जो धनिक वर्ग के
संमुख करके आत्म-समर्पण
सामंतों के खड्ग पली थी
उसका आज करूँ मैं बंदन ?

कौन कह रहा है करुणा वह
या कि अहिंसा का विघोष थी
प्रकृति द्वन्द्व कल्पना बनाता
पुनर्जन्म छलना अमोघ थी

उधर ब्राह्मणों की लोलुपता
किंतु इधर भी वह ही छलना
धर्म धर्म तो कैसा ही हो
जाग्रत को करता है सुपना

क्षणिक वाद में बदल रही हैं
जहाँ अरे हर वस्तु निरंतर
आपस का संघठन अरुक जो
चलता है रह रह कर मर्मर

उसमें दुख की जोड़ कालिमा
जीवन से कर दिया विमुख था
फिर निर्वाण भला रे किसका
वह सब केवल आत्मतोष था !

नातपुत्र जो उधर अहिंसा
का गंभीर निनाद जगाता
जल पीने पर ध्यान दे रहा
अकर्मण्यता है दे जाता

तप की भीषण ज्वाला उसमें
उपनिषदों से चली आरही
स्थित है किसकी आत्मा बोलो
अंधियारी है बढ़ी आरही ?

बीत गये हैं...अगणित राजा
अगणित वे दर्शन के वाहन
बुद् बुद् से चमके थे उस दिन
स्वयं फट गये हैं कर क्रंदन

नहीं अरस्तू—और न कोई
अजित केश कम्बल की वाणी
मेरे मन को शांति दे रही,
सबकी गरिमा फैला पानी

मैं तो देख रहा हूँ केवल
कुछ हल रव करते आते हैं
भूमि भाग पर कहीं खड़े हो
शंखध्वनि निज फैलाते थे

यह उत्थान पतन की क्रीड़ा
अंधकार का महालोभ है
ज्ञान ज्ञान भी बिका हाथ में
होता मुझ को भयद क्षोभ है

वर्ग भेद है वर्ण भेद है
ऊंचे बोल कर्म है नीचा
इन टुकड़े टुकड़े वर्गों ने
मानव के दुख को ही सींचा

सामंती गण मिटा मिटा कर
वह चाणक्य अदम्य भयावह
बना रहा साम्राज्य प्रखर है
आह हो रहा है क्या सब वह

क्या देखूँ ओ तिमिर बता दे
अरी रात की शांति बोल दे
मैं तो नाव नहीं खे पाया
तूही मेरी पाल खोल दे।

आह ! विकल हूँ क्यों मैं चंचल
देखूँ तो संसार बदलता
जो जैसा है वैसा देखूँ
अपनेपन में चलूँ न बहता।

अरे मंदिरों से टिन टिन कर
संध्या में हैं स्वर गुंजारित
अगरु धूम की सलज्ज शिखाएं
गंधवाहिनी चलतीं झंकृत

मानव की दुर्दम्य वासना
अधरों पर ही आलोड़ित है
एक ओर है राग, उधर रे
महाद्वेष करता क्षोभित है

मौर्य्य कुशन पल्लव बर्बर वे
शाक औ' गुप्त सभी आते हैं
एक दौड़ की होड़ लगाये—
सांध्य खगों से बह जाते हैं

वही गीत है वही टीस है
वस्त्र बदल जाते हैं थोड़े
प्राची पश्चिम में छलना के
फिर फिर बिछ जाते हैं रोड़े

एक महल उठता है ऊंचा
फिर ठोकर से गिर जाता है
उसी भस्म को फिर चिन चिन कर
नया महल उठता आता है

किंतु ज्योति अवरुद्ध रुकी है
निज निर्माणित पाश भयद हैं
रुद्ध कर रहे उर मानव का
रुकते उसके श्वास श्वास हैं

कायर है वह जो अतीत की
छलना में विस्मृत रहता है
वर्त्तमान की भयद अग्नि में
तप कर पीछे को मुड़ता है

फिर झंकृति नूपुर की उठती
नील कमल सम नयन मचलते
स्वर्ण कवच के भीतर योद्धा
के कोमल अरमान किलकते

अमल सुरभि से गंधित आलय
संगमर्मरी स्निग्ध कच्छ रे
आह रणरणायित कंजों में
वक्षों पर मकरंद बिखरते

किंकिणि बजती कंकण बजते
रशना बजती नूपुर बजते
शंखध्वनि का नाद हहरता
खड्गों के उन्माद गरजते

सागर की नीली लहरों पर
व्यापारी पोतों के गायन
महाघोष से मार थपेड़े
महाशून्य में भरते गुंजन

तरल सलिल में रंगबिरंगी
छायाओं सा आलक्तक रे
ज्वलित शिखाओं से गातों से
टकराता है हास विपुल से

मंथर नर्त्तन द्रिम द्रिग धिमिया
नील भंवर सम केश फहरते
चंचल चितवन, गुंजित मधुवन
आसव पी पी स्नेह उमँगते

वह घनघोर घटा सी थहरी
महानिशा में सुंदरि चलती
प्यार प्यार का दीप जलाये
बांध तोड़ती पागल चलती

उधर गरजते मेघ भयंकर
भीषण ह्रादिनि वज्र गिराती
पर मानवता की अमोल उस
प्रथम टीस में सब कुछ सहती

देख रहा हूँ नारी तो है
एक द्वन्द्व का रूप अनोखा
सामंती छलना का सारा
चित्र उलझनों को ही ढोता

कितनी बातें कितनी सुधियां
कहाँ कहाँ तक याद करूँगा
कितने ज्ञानी कितने योद्धा
किस किस का अब गान करूँगा

मैं समाज तो देख चुका हूँ
कभी कभी अब मेरे मन में
चित्र खेल उठते हैं रह रह
अलग अलग से अपने मन में।

यह लो पंथी सा विचार यह
लगा दौड़ने दूर दूर तक
कुछ कुछ मंज़िल सी मिलती हैं
रुक रुक जाता जहाँ तनिक थक

शुभ्र सौध वातायन में से
छन छन ज्योत्स्ना झांक रही है
नीरवता बाहर अमराई
में अपना स्वर साध रही है

कोमल वेणु बजाती सखियां
अब चुपचाप थकी सोती हैं
गंधवाहिनी अगरु शिखायें
पवनारूढ़ विकल होती हैं

कौन खड़ा है भ्रांत हृदय यों
देख रहा है भर कर ममता
किंतु चरण जो अब बाहर है
कौन विराग उसे है ग्रसता

राहुल चंचल, मृदु यशोधरा
आह यही क्या सब जीवन है ?
नहीं नहीं वह वृद्ध रोग औ'
मृत्यु—कहाँ तब यह यौवन है ?

पर जीवन का ध्येय कहाँ है ?
हँसता था प्रासाद अमल क्षण
फिर विशून्य से असंतोष का
नाद घहरता क्यों आतुर मन ?

आज गया सिद्धार्थ बना जो
बना तथागत ही आया है
अरे इसी का यशोगान ही
उस 'अशोक' ने भी गाया है

दूर चीन से प्रतिध्वनि आती
'पंपा' 'यव' से संवेदन है
और 'संघमित्रा' की नौका
सागर पर करती लेखन है

अब 'कलिंग' में नाश नहीं है
किंतु नहीं जीवन हँस पाता
'ध्रुवस्वामिनी' के कटाक्ष में
'पाटलिपुत्र' शीश उकसाता

अरे एक क्षण विस्मित हो जा
किसकी गूंज रही यह वाणी—
महागुप्त साम्राज्य भग्न हो
डूबे आज रसातल में ही
खंड खंड हो आर्य्यपट्ट यह
विदलित हो यह राजमुकुट भी
किंतु सभ्यता के हित फहरे
आर्य्यपताका वक्षु तीर ही
एक नहीं मुझ जैसे लाखों
स्कंदगुप्त बलिदान भले हों
पर हूणों की ध्वंस अग्नि से
शिशु नारी औ' शस्य बचे हों।'

शिरस्त्राण को छू छू कर वह
लौह खड्ग करते अभिवादन
अरे रक्तरंजित कृपाण ले
करते आर्य्यभूमि का वंदन

वह अदूरदर्शी बौद्धों के
संघारामों के कुचक्र हैं
बेच रहे संस्कृति के सारे
मोल, साधते पाप वक्र हैं

अरे उधर चल जहाँ ग्रीस में
'फ़ानीशियन' पोत पर सैनिक—
पारसीक आते हैं भीषण
लौह फलक जगमग ले गर्जित

उठी उदधि में भीषण आंधी
हाहाकार मचा कर सारा
बेड़ा क्षण भर जल में काँपा
डुबा ले गई गहरी धारा

दो ही वर्ष व्यतीत हुए हैं
'स्पार्टा' का विद्वेष वारि बन
वह यूनानी काठ खा गया
नीचे ही नीचे आतुर बन

नैया डूब गई वह जल में
फिर भी यूनानी जगते हैं
'हेला' की पवित्र पृथ्वी में
भाव शांति के ही जगते हैं

ले अब 'थर्मोपाली' आई
भीषण युद्ध भयानक होता
'जरक्सीज़' की विजय वाहिनी
पर प्रतिरोध हार को ढोता

वह 'एथेंस' का मृदु मृदु उपवन
या कि 'ग्रीस' ही दास हुआ है
अब वह 'ओलम्पिक' का वैभव
पल भर का उपहास हुआ है

हाँ भीषण पगध्वनि होती है
रोम राज्य को कंपित करती
छाया बन कर जिस वैभव की
भयद गुलामी निशिदिन बढ़ती

जल जाये यह रोम हुआ क्या
'नीरो' अपना फ़िडिल बजाये
या फिर लहरों के संघात में
महानाश ही स्वर गुंजारे

'सीज़र' और 'पोम्पिआई' के
खड्ग सुनाते रक्तिम गाथा
'आल्पस्' पार करती वाहिनि पर
विजय विजय का वैभव छाता

क्यों संध्या की अलस रश्मियों
में वह 'हैनीबॉल' मौन रे
आत्मघात करता है हारा
आशा को कर चूर चूर रे

आज कहाँ वह 'क्लियोपैट्रा'
रूपशिखा जो मन भरमाये
आज कहाँ 'कार्थेज' शक्ति जो
प्रतिहिंसा का खड्ग उठाये

भयद सिनेटों में दर्पित जो
अपने स्वार्थों में प्रलिप्त हैं
स्वर्णदंड का भार वहन कर
करते जग भर को विक्षिप्त हैं

अरे रोम अभिमान भला क्यों
मानव ही तो सत्य केन्द्र है
साधन से वह बनता तो है
सामंजस्य किंतु चेतन है

फिर क्यों कोई साम्य नहीं है
मैं अज्ञान कहूँ क्या इसको
जो तू भूला मदिरा पीता
'ज़मज़म' का जल समझे उसको

नहीं नहीं अब और नहीं कुछ
केवल है अत्याचारी सुख
जिसके नीचे मर्मर करता
शक्ति जोड़ता दासों का दुख

अरे गुलामों के कंधों पर
जब सारे समाज का बोझा
तब नव जाग्रति का अमोल यह
सुपना धीरे धीरे उठता

नभ में तारा चमक रहा है
दूर चीन से कौन देखता
चलता है अब उसके पीछे
संस्कृति का उन्माद लेखता

वह पहाड़ियां प्रिय होनानी
वह पीली सरिता की घाटी
कन्फ्यूशियस वृद्ध की वाणी
करती ज्यों उसको उत्साही

अरे अभौतिक बातें भी कह
दासों में जो साम्य जगाता
वह 'ईसा' भी रूढ़ि तिमिर में
अपनी सूली आप उठाता

इन बलिदानों से भी मानव
का जीवन अब तक न हँसा है
अपने समाजिक कुचक्र में
सिर धुनता सा त्रस्त फँसा है

कितने संत न जाने जीवित
जला आग पर भस्म किये थे
किंतु साम्य के शब्द अपरिमित
अमर प्राण संदेश लिये थे

चूर होगया वह सिंहासन
जिस पर सीज़र बैठा करता
अरे देख जैसे क्षण में ही
ईसा का उल्लास उमड़ता

किंतु पूछता हूँ मैं सबसे
वही क्रान्ति क्या अंत बनी थी
क्या तलवार बनी स्वार्थों की
नहीं वही फिर रक्त सनी थी

आज क़बीलों वाली मस्ती
पिसी ग़ुलामी में चिल्लाती
मानवता की शृंखल तृष्णा
दासों पर घिरती ही आती

चारों ओर वही शोषण है
वही रक्त है भूमि भिगोता
देख गुलामों के शव पर माँ
का वह क्रुद्ध हृदय है रोता

यह जो एकराज सत्ता है
ऊँच नीच का भेद रख रही
न्याय नहीं करती है, लेकिन
स्वार्थों का है माप बन रही

श्रम का मोल ग़ुलामी ही है
पूँजी के बल पर मानवता
चल न रही ठोकर खाती है
धनी इसे ही शाश्वत कहता

अरी सभ्यता! क्या ऊपर की
चकमक मानव की उन्नति है?
सामंजस्य नहीं आपस में
क्या वह साधन की परिणति है?

मीनारों पर चढ़ कर रह रह
जो दुंदुभि निर्मम बजती है
क्या इतिहास वही है या फिर
यह भी जो जनता पिसती है?

कितना दुरभिमान मानव में
एक नशे में भूला प्राणी
मानवता के मूल सुखों में
आग लगा हँसता अभिमानी

पर क्या मानव पंथ रुकता है
बूँद बूँद जब सागर बनता
तब भीषण जहाज़ भी क्षण में
तूफ़ानों में डूबा करता

'स्पार्टाकस' के नयन ज्वलित से
दासों में भरते हैं जीवन
धन्य धन्य ओ मानव गरिमा
सदा पाप से करती घर्षण

एक दास की रक्त बूँद जो
धरणी पर है गीत लिख रही
वह 'यूरीपिडीज़' या 'वर्जिल'
सबकी वाणी तुच्छ हो रही

धनिक वर्ग को सत्य बेच कर
जो कहता है 'यही ठीक है—
यह शोषण यह पाप कलुष ही
चिर शाश्वत है अमर लीक है'

अंधकार वह, चिर स्वार्थों की
लिप्सा में है झूंठ कह रहा
यदि विश्वास नहीं तो ले सुन
दासों में विद्रोह जग रहा

अरे एक क्षण समय हँसा है
हँस लूँ गिरते साम्राज्यों पर
मानवता के हेतु तड़प कर
उठी हुई खूनी बांहों पर

ले स्वतंत्र होता है अब से
इंगलिस्तान आज जो भूला
कल तक जिस पर रोम राज्य का
भयद खड्ग था बलमय झूला

नील नयन वाले वासी वह
जो ग़ुलाम थे भूल गये हैं
भला ग़ुलामी किसको कहते
काठ वारि से फूल गये हैं

आह दार्शनिक जो कहते हैं
एक शक्ति नियमित करती है
इस असाम्य से अंध न्याय से
आज कहाँ वह अब पलती है

यह चल चित्र देख लगता है
मानव है अभ्यास कर रहा
महा नदी का जल प्रवाह में
नव नव भू पर निरत बह रहा

क्यों है यह मानव ग़ुलाम सा
पशु सा दरिद्रता से शोषित
क्या वैभव ही इनके श्रम औ'
रुधिर नींव पर होता पोषित

मैं सभ्यता कहूँ फिर किसको
जब मार्ग का मार्ग अरुचिकर
स्वयं बनाये दुख ग्रसते हैं
स्वार्थों में जीवन बंदी कर

हास विलास प्यार औ' तृष्णा
सब ही श्रेणी वर्ग भेद के
दास बने अपने को छलते
कहते सब कुछ ईश देव के।

क्या विचार भौतिक पथ तज कर
व्यक्ति रूप में सुख पायेगा ?
भूत—भूत की धूमिल छाया
में प्रकाश अब का पायेगा ?

वज्रयान की स्थविर कल्पना
शून्यवाद की खोखल माया
मरघट को ही चरम लक्ष्य कर
कहती जीवन का सुख पाया

सिद्धों की अटपट बानी ने
शिथिल किये हैं कितने जीवन
आत्म और भौतिक के कितने
चित्र कर रहे हैं संघर्षण

अरे वर्ष चलते जाते हैं
अंधतिमिर में मानव चलते
जब दुर्दंभ लड़खड़ाता है
शून्य अंक में हास उमड़ते

विकल परिस्थिति का अनुयायी
सामंजस्य सदा करता है
और बना अनबूझ सतत वह
उससे नव सर्जन करता है

अरी ओ जीवन की दुर्दांत
पिपासा क्या सुनती है बोल
बनाती है जिसको उपयोग
वही हो जाती सूनी रोल
एक 'मैं' का इतना अभिमान
किंतु गति का इतना उपहास
बता तो दौड़ धूप में कौन
बन गया औरों का अब पाश
अनेका छवि का एक स्वरूप
आत्मचिंता का लास अलक्ष्य
भोज्य का भक्षक हो सापेक्ष
बन गया स्वयं विकल सा भक्ष्य
सान्त की शृंखल का जो नाद
गूँजता अणु अणु में सायुज्य
बिखरती लहरों का उल्लास
बना चिल्लाता आज असत्य
नास्ति की जो माया है आज
अस्ति थी कल लेकर आकार
सृजन का होता यदि संहार
मनुज क्यों होता बोल उदास
सतत के नर्त्तन का अविराम
चरण फिर फिर चलता है किंतु
हृदय क्यों प्यासा सा विकलाश
सूँघता फिरता जैसे जंतु
ज्ञान ताना तू खींचे देख
और बाना विज्ञान महान

किंतु तन तो तू है जिस ठौर
वस्त्र की होती है पहँचान
कल्पना की ईंटों की नींव
उसी पर धरता हाय समाज !
बोल तो कब तक घर यह मुक्त
खड़ा होगा ले स्थिरता साज
सहस्त्रों वर्षों के यह शब्द
अल्प में उठते हैं यों बोल
पवन पर उड़ते हैं जो श्रांत
शून्य देता है जिनको तोल—

(प्रश्न)

मैं मानव हूँ मैं ईश्वर हूँ?
निर्मित हूँ या निर्माता हूँ
पर मानव क्या? वह तो निर्बल
ईश्वर क्या? मेरा ही चिंतन
क्या हूँ ? क्या हूँ ?

मैं सागर हूँ मैं जलधर हूँ
शैलों सा दृढ़, ज्वालामुखि हूँ
संतरण किये
नभ पार किये
सब की जय में संतोष नहीं
क्या हूँ ? क्या हूँ ?

ऋषियों की वह गंभीर गिरा
मिट्टी हूँ मैं अविनश्वर हूँ

मैं तो अगाध का अणु भर हूँ
पर यह अगाध मेरा अणु है
मैं हूँ, यह मेरा सत्य अटल
सापेक्ष रूप का सत्य अमल
मैं अंधकार
मैं महाज्योति
छाया सा दोनों का विकास
मैं गति का अधिनायक मानव
क्यों हूँ ? क्यों हूँ ?

(गीत)

नीले मेघों की छाया में
मन घूम रहा तू क्यों उदास
मुड़ मुड़ कर क्या है देख रहा
स्वप्नों से क्यों है खेल रहा
यह प्यार जलाता है जीवन
कब तक अनजाना है प्रकाश

तरु तरु सुंदर अणु अणु सुंदर
यौवन का यह प्रति पल सुंदर
युग युग के अन्वेषण की लघु
छाया है जीवन का विकास

यह कृषि यह मौन वनस्पति रे
तरु तरु पर मर्मर की यति रे

गति की अथाह वासना भरा
मैं शिशु अबोध यह मुक्ति पाश

मैं तो अबाध भी शून्य हृदय
विभ्रममय मेरे शांति प्रलय
मैं महामृत्यु के अंचल गह
करता हूँ जीवन से विलास

सर्ग–१२

आख्यान :

अतृप्त मेधावी असंतोष से भर कर देखने लगा...

युग युग की नीरव अभिलाषा
कब तक तू यों ही कसकेगी
अरी पिपासा क्या चिर मरु में
यों ही निरुद्देश्य भटकेगी

'मक्का' की उस पण्य वीथि में
बैठे हैं अगनित व्यापारी
अरे कारवों की विश्रांति में
मोल तोल कर निधियां सारी

देख अचानक कौन वहाँ पर
नारी को नंगी करता है
और ठोंक कर जाँच कर रहा
जैसे पशु को देख रहा है

आह ! पाप के विकट ध्वंस को
ठीक कह रहा कौन निठुर है !
यह अपमान भयद भीषणतम
मानवता पर उमड़ रहा है

दूर दूर तक मरु के उर पर
जो क़ाफ़िले चले जाते हैं

यही पाप की कालिम छलना
देश देश में फैलाते हैं

वह ले जो है खड़ा विकट सा
दृढ़ शरीर काला सा प्राणी
वह ग़ुलाम है मोल तोल का,
उससे तो स्वतंत्र है पानी

उसका जीवन उसका यौवन
उसके सुपने उसका सब कुछ
दास—दास है—हीन तिमिर है
मिट्टी अभिलाषा का सौरभ

महा चेतना ! देख रुधिर से
भींग गया है भीषण मरु भी
लूट—लूट से व्याकुल मानव
रो रो उठता बार बार री

ज्ञान दूर है, दूर ज्योति रे
केवल सत्ता हित लड़ते हैं
जीवन की सारी मर्य्यादा
अंजलि में लेकर चलते हैं

पाषाणों की पूजा करते
भय से ईश्वर की उपासना
मेरे मानव—क्या सह लेगा
तू समाज की यही यातना ?

आह देखने वाले तेरे
नयनों से क्यों मोती ढुलका
अंतर्गीतों के हुलास में
संवेदन का स्वर क्यों पुलका

संध्या की भींगी किरनों में
अलस विहग ज्यों नीड़ाकुल से
पंख चलाते लौटा करते
वैसे मन मेरा चंचल रे

अरे एक क्षण स्वप्न अमरता
का नश्वर नयनों में नाचे
परिवर्त्तन का दूत उसे यह
आगे बढ़ चुंबन से आँके

विस्तृत मरु में वह चरवाहे
जान कभी तृष्णा वैभव की
करते थे, साम्राज्य बनाने
उठा रहे हुंकार प्रबल सी

'अबू बक्र' के साथ एक दिन
जिसने 'मक्का' तजा रात में
आज उसी को नबी बना कर
उठी हुई तलवार याद में

'हेरा' की उन गुफा शिला पर
किसका चिंतन डोल रहा है
अरे 'मुहम्मद' का बुलंद वह
साम्य शब्द सुख तोल रहा है

कितना है भ्रातृत्व अकथ रे
'बक्क' 'लाल' को फेंक अलग कर
एक हरे परचम के नीचे
मिलते हैं सब वर्ण मान तज

अश्वारोही प्रबल भयानक
अरे 'स्पेन' तक झंडा फहरा
'आल्लाहो अकबर' के गर्जन
से वह नील गगन तक घहरा

'शार्लमैन' का विकट संगठन
'चार्ल्स' वीर ने बाँट दिया है
'ओटो' ! वह सम्राट देख तो
फिर साम्राज्य प्रमाण किया है

आह धधकती लपटें भूखी
'हुक्म' नियोजित ज्ञान कोष को
जला रही हैं, रूढ़िवाद की
पवन जगाती अग्निक्षोभ को

मरु के भीषण उर पर लिख कर
एक पुकार उठाई ऐसी
जो जन जन धर्मांध बना सा
मिलता था, यह तृष्णा कैसी !

फिर डंके पर चोट लगी है
फिर अश्वारोही उद्धत हैं
पूर्व और पश्चिम पथ गामी
रेत उमड़ छाती चंचल है.....

नाचता है यह कौन ?
अरे इतिहास
नृत्य कर
अंगि भंगिमा
से मानव गति दर्शित कर
सविलास !

समय के मुक्त प्रवाह
अर ओ अंतराल के भार
अरे ओ वसुंधरा के प्यार
बोल दो तुम भी आज
बोल दो जीवन की गति देख
खुलें ये मेरे नयन
जगेंये मेरे प्राण
कि मुझसे ध्वनि उद्भूत
जगा दे जग के प्राण !

विश्व में अगणित कर्म
सभी का अपना अपना काम
किंतु मैं कवि हूँ मुक्त
सभी का सामंजस्य
अरे मानवता की पहँचान

हृदय का ज्ञान !

ज्ञान का कोष
कर्म की बहुकरणीया प्रीति
अनेकों व्यापारों का रूप
सभी वन जायें मुझ में गीत

(गीत)

जो मानवता की भूख
श्रमिक के होठों की मुस्कान
प्रकृति की गति लयमय जो चलन
उसी की प्रतिछवि एक,
जहाँ अवरुद्ध हो रहा मुक्त
जहाँ परपथ की स्फूर्ति
भूत औ' महा भविष्यत् बीच
आज का सुंदर रूप
सत्य में लीन,
बना उपयोग रूप में शांति
अरे सापेक्ष नाद में एक
प्रवाहित गति की तान
बदलनेवाली सृष्टि
बीच यह आत्मतोष का श्वास
सतत गति का साहाय्य

उत्तर दक्षिण काँप रहे हैं
आज युद्ध का भयद प्रभंजन
उठा रहा है इस जनता से
भीषण चीत्कारों का क्रंदन

संस्कृति का विक्षोभ गरजता
पर वह साम्राज्यी लिप्सा है
'हर्ष' और 'पुलकेशिन' का वह
रह रह कर गर्जन उठता है

देख रहा हूँ 'ह्वेन सांग' का
मन कितना पुलकित हर्षित है
महाचीन से संस्कृति की वह
ग्रंथि जोड़ता एक सूत्र है

अरी 'मृणाल' ! कौन तृष्णा थी
जो परदेसी भी प्यारा था
जाति वर्ण के भेद तोड़ कर
जीत जीत कर मन हारा था

इस अनूप भारत के तल पर
कितने योगी, सिद्ध, भैरवी
आये और मिटे मरघट के
धूंए से चुपचाप विकल री

वह शिव का आल्हाद अमर सा
जो कल्याण समाधि बना था
नरमुंडों में मदिरा बन कर
एक नशे का मंत्र बना था

अरे भला सब कुछ माया है
फिर भी ब्रह्म सत्य है केवल
कहने वाला शंकर भी तो
मेधावी की तृष्णा चंचल

और देख आया कबीर वह
तुलसी सूर जायसी आये
एक ओर साम्राज्य बन रहे
पर किसको कैसे समझाये

लोहे से लोहा टकराया
इस्लामी संस्कृति ने बढ़ कर
किया पराजित यह भारत था
घायल क्षत्रिय तड़पे उठ कर

एक निमेष उठे हैं केवल
गोरी, खिलजी, सैयद, लोदी—
और बयाने की धरती पर
मुग़लों के कर सब कुछ खो दी

भूल चुका संसार, एक दिन
धर्मकीर्ति की जगमग वाणी
बहा रही थी रूढ़ि कलुष को
हिम से बना बना कर पानी

विकल बह रही है लघु क्षिप्रा
'महाकाल' से ध्वनि आती है
क्या विन्ध्या के निर्जन वन में
विरही की करुणा गाती है ?

वह असंग, 'दिङ्नाग' नहीं है
'नागार्जुन' बस नाम शेष रे
'तिब्बत' के हिममय शैलों में
खोई बौद्ध प्रभाव रेख रे

पर मानव का जीवन क्या तब
अपनी सत्ता से प्रसन्न था
क्यों वह सुपना जो जगमग है
हुआ क्षीण सा विकल छिन्न था

एक व्यक्ति की बात नहीं है
यह इतिहास अमर साक्षी है
नाश वस्तु का प्रतिपादन है
जन्म स्वयं जैसे हावी है

मानव आता है चल जाता
कुछ पल जग में डेरा रहता
किंतु वास यह एक सत्य है
इसे कौन छलना है कहता

कुछ सामंतों को कर देकर
जनता उन पर निर्भर रहती
और निरत उत्पादित श्रम से
उनके सुख का कारण बनती

अरे दार्शनिक, योद्धा, जो भी
आज काल में शीश उठाये
पर्दे पर पड़ती छाया से
भूत—भूत अस्तित्व जगाये

स्वयं बद्ध थे भौतिक जग में
अरे परिस्थितियों के ही थे
विकल प्रतीक, अमर कह निज को
चलते थे मिथ्या को पी के

वह 'प्रच्छन्न बौद्ध' आपस की
तृष्णा का व्याकुलित समन्वय
ज्योति तिमिर सुलझा कब पाया
हुआ दिग्विजय कारा में लय

कुछ ऐसे वह वीर मनस्वी
त्यागी, योद्धा, कवि, गायक रे
क्या न चल रहे थे वह खुद ही
समझ रहे निज को चालक रे

क्या यह ईश्वर की कवित्वमय
एक कल्पना पाश नहीं थी ?
क्या यह वर्गभेद रखने की
अंधकारमय बात नहीं थी ?

वह जो हरम जहाँ सुंदरियां
छूम छनन निशिदिन करती थीं
वहाँ स्वामिनी की कारा में
बंदिनि आँसू ढुलकाती थीं

क्या नारी का सत्य वही था
जो कुछ सामंती गणना थी
नर के हाथों से खुलने ही
रत्नजटित नारी रशना थी ?

भिन्न भिन्न जो धर्म बने थे
वह सुधार थे बार बार के
एक हटा शोषक—पीछे से
आया अन्य—कि जीत हार थे

कितने मानव थे जो जग में
ज्ञान पा सके तुष्टि पा सके

ऊँच नीच के भेद जगत में
क्योंकर ऐसा त्राण पा सके

वर्गमान के करमें यदि था
अधिकारों का दंड प्रबलतम
तो विद्रोही को नतशिर कर
धर्म बना था अग्निबाण सम

इस मानव में परिवर्त्तन की
अग्नि देर से सुलगा करती
किंतु एक संस्था जर्जर हो
उसी समय नूतन जग उठती

आह विकल रहता वह निशिदिन
सुख की एक आस पर जीवित
लुट जाता है जब संचित रस
कर लेता आँखों को मीलित

कितने वे धर्मांध बने से
अपनी अपनी तलवारों से
आज न्याय की किये घोषणा
बढ़ते हैं अब मतवालों से

आज 'मुहम्मद' के उपदेशों
का वह साम्य कहाँ खोया है
आह कहाँ ईसा की करुणा !
देख देख यह मन रोया है

अरे वीरता कह बर्बरता
को उत्तेजित आज करूँ मैं ?

अपने हाथों विष से रह रह
जीवन का घट हाय भरूँ मैं ?

क्या यह मानव धर्मों के हित
संकोचों में ही जीता है ?
परलोकों की माया गढ़ कर
कैसा आत्मतोष पीता है ?

(गीत)

ओ प्रकृति संवेदना
किस ज्वार से यह तिमिरतल के
आज मोती तीर पर
आये अनोख राग भर के

कौन बंदी है यहाँ पर
कौन है जो राह रोके
जो युगों की अमर तृष्णा
को सुलगती आग टोके

तड़कती है जो पिपासा
सांस लेती क्यों थकी सी ?
लहलहाती डाल पर से
क्यों टपकती है पकी सी ?

आज दुंदुभि बज गई है
मनुज में विद्रोह जागा
वास्तविक सुख शांति का
सुपना नयन में आज जागा

आज कोई भी भुलावा
भ्रष्ट पथ से कर न सकता
सृष्टि में सब एक से हैं
बस यही कल्याण जगता

वह 'गलीलियो' बंदीगृह में
पड़ा सत्य के हित रोता है
और पोप का दंभ मनुज के
अन्वेषण को ही खोता है

किंतु एक दिन में ही जिसने
ताराओं के ईश्वरत्व को
चूर कर दिया, आज मनुज ही
बदल रहा अंतर्बाहर को

फिर कैसे कल्पना बनेगी
प्रकृति रहस्यों का विज्ञान अब
जो वह रुद्ध रहे बाँधों में—
रुद्ध कंठ फिर उठे गान कब ?

'न्यूटन' तू कह रहा आज क्या
इस पृथ्वी में आकर्षण है
और सूर्य के गिर्द घूमती
पृथ्वी में चलता जीवन है ?

एक नहीं, ओ सत्य पथिक तुम
नयन खोलते हो मानव के

अभिवादन करता हूँ तुमको
सुखपथ निर्माता अबाध रे

अरे दार्शनिक व्याख्या करता
सब का जैसे तोल कर रहा
अपने को अंतिम प्रवीण कर
जैसे जग पर भार तज रहा

कवियों ने कल्पना सांध कर
उसको मन की बात बनाया
बहुत दिनों इस मानवता ने
उस ही गाने को दुहराया

पर वैज्ञानिक ! तुम निस्स्वार्थी
क्या रहस्य यह खोल रहे रे
आज मनुज की मेधा से बढ़
अणु अणु मुस्का बोल रहे रे

नहीं सत्य का अंत कहीं है
मानव है केवल बालक सा
प्रगति निरंतर है उसका पथ
जिस पर जायेगा वह बढ़ता

सतत चेतना के पंथी तुम
क्रिया कर्म के एक समन्वय
फल है श्रद्धा प्रगट रूप में
सत् होता जाता है चिन्मय

जो अतलांत सिंधु को लघुतम
नौका से खे पार गया था
वह 'कोलम्बस' जग में कितना
नूतन नाटक रचा गया था

अरे 'मिसौरी' की लहरों में
क्या न गुलामों का बह बह कर
रक्त उदधि में खेल चुका है
वर्ण दंभ पर वज्र मार कर

'वाशिंगटन' की आजादी की
वह करवाल उठी है अब भी,
'लिंकन' की दुर्दम्य मानवी
आभा चमक रही है अब भी

देख रहा हूँ मानवता की
आशा भौतिक का ही सुख है
सतत समन्वय खोज रहा वह
दुख की पड़ती विकल चोट विकल है

वैभव से व्याकुल मत हो मन
क्षण भर देख कि दुखी कौन है ?
एक दुःख के रहते जग में
बता यहाँ पर सुखी कौन है

'प्रशा,' 'रूस,' या 'फ्रांस' कहीं भी
मानव तो आजाद नहीं है
सोने पर चलते सामंतों
का ही तो सब लास नहीं है ?

अरे बचाता है जिसको तू
क्या वह न्याय और समता है ?
कटा हुआ तन ही समाज में
सुख स्वर दे दे कर बजता है

इस चकमक से नयन मूँद कर
अंधकार में गिर मत कायर
सत्य वही है, शक्ति शांति औ'
न्याय,—पाप से संघर्षण कर

यह साम्राज्य मनुज के असली
मुक्त विकास रोक देते हैं
नियमों के जालों से रह रह
लहर विचार टोक देते हैं

देख एक दिन जो 'बाबर' ने
वैभव की थी शिला जमाई
अरे उसी की महाघृणा में
बर्बरता ने रागिणि गाई

याद नहीं है क्या ईरानी
राजा का कपाल कर मंडित
स्वर्ण स्वर्ण से, फिर मदिरा भर
पीता तुर्किस्तानी नरपति

आह राक्षसी यह तृष्णा क्या
भूल सकेगी रे मानवता ?
क्या सोने से मँढ़ कर ही तू
कह सकता बस यही सभ्यता ?

अंध कलुष की ओ प्रतारणा
क्या सत्ता है एक वासना
एक वेग जो घुलमिल लय कर
बन जाता है अंत यातना

छंद छंद कर जो यह कविता
मानवता का चिर प्रयत्न रे
क्या तिमिरा की ही लिख लिख कर
ज्योति न पाये रहे भग्न रे !

कहाँ है रे इस मन की शांति
पूर्व पश्चिम हर ओर अशांति
हृदय तू करता किसको प्यार
कहाँ पायेगा वह अभिसार !

आह श्रेणी पर चढ़ते बाल
'घुटुरवनि' चलते सुंदर पाश
कहाँ वह यौवन का चिर दीप्त
वेग जो वैभव का हो लास ?

आज देख कर भग्न कब्र यह
मेरा मन चंचल होता है
क्या पाषाणों के उर में भी
मानव का सुख दुख रोता है ?

नहीं नहीं निर्जीव खड़े हैं
प्रदर्शिनी से मुग़ल महल वे

क्या उनके लय पर रोऊं मैं ?
बूंद बूंद चू रहे गरल के

ओ साम्राज्ञी 'नूरजहाँ' क्या
कष्ट नहीं होता है तुझको
आज कौन सा रूप दिखा कर
मुग्ध कर रही है तू जग को ?

'नहीं अकेली' ध्वनि उठती है
आज क़ब्र से गुंजित प्रतिध्वनि
अमर मरण की महराबों पर
स्वर्ण खचित गुंबज सा जीवन

नहीं अकेली, आँख खोल कर
देख सभी यों ही सोते हैं
करुण पुकारों में यौवन की
आँखें बंद किये खोते हैं

संध्या की रंजित किरणों का
अलस विहाग मदिर पग धर धर
वह उठता है कालिंदी की
कंपित चंचल लहर लहर पर

एक एक तूफान भयानक
पूर्व और पश्चिम में चलता
जिसमें दलित किसानों का वह
जीवन है रह रह कर पिसता

वह 'नैपोलियन' की सेनाएं
जिनका वह अधिराज बना है

राष्ट्रक्रान्ति को विफल कर रहा
फिर साम्राज्यी खड्ग तना है

कल सामंती दंभ तोड़ कर
पूंजीवाद उभर आया था
अरे मशीनों के साधन पर
उत्पादन ने क्या गाया था

(पूंजीवादी मशीन नृत्य)

चग़ चग़
चग़ चग़
से भरता है
अग जग
अग जग

उगल उगल हम
वस्तु निरंतर
पचा पचा कर
उठा उठा कर
कर कर देतीं
प्रति पल सुंदर

श्रमिक हमारा दास बना है
जिस पर स्वामी वर्ग तना है

धर्म हमारा दंड बना है
जलते वैभव
दीपक

जगमग

जगमग

दीपक के तल अंधकार है
वह मानव का अहंकार है
चिर असाम्य है लोलुप तृष्णा
घुमड़ रही हैं आँधी कृष्णा

उत्पादन

उत्पादन

लाभ लाभ की प्यास हमें है
कला
दार्शनिक
दास हमारे
सामंतीगण
हम पर निर्भर
हमें पड़ी क्या
कैसा भी हो

वह वितरण

वह वितरण

जो है जग में
वही सत्य है
वर्ग भेद ही
अंत गत्य है
निर्धन-पशु सा
अबल मर्त्य है
करले चाहे

आक्रंदन
आक्रंदन

चग़ चग़
चग़ चग़

'हेगेल' कहदे कहाँ टिका है
तेरा वह विचार सब से पर
'फ़्यूअरबाख़' धर्म की छाया
ढूँढ़ रहा है क्यों व्याकुल तर

क्या मानव यह नहीं निरंतर
प्रगति कर रहा धीरे धीरे ?
क्या यह अतल उदधि की नैया
नहीं आ रही सागर तीरे ?

स्वतंत्रता का इच्छुक प्राणी
धीरे धीरे मुक्त हो रहा
अपने पथ की बाधाओं से
बार बार नव भार ढो रहा

बर्बर गये, सभ्य जो आये
उनमें भी तो अगन भेद थे
नूतन के संमुख पहलों के
नियम शृंखला के विभेद थे

अब यह विश्व नहीं संकोची
देश देश व्यापार कर रहे
पूंजीवादी प्रगति बन गई
कारा—सब हैं विकल त्रस्त रे

एक विकट कोलाहल जागा
सारा विश्व काँपता है क्यों ?
वर्गों का स्वार्थी जीवन यह
अपने शस्त्र उठाता है क्यों ?

एक दिन था सामंती राज्य,
मिटा कर जिसे खड़ा है आज
विश्व में भीषण पूंजीवाद,
तड़प कर चिल्लाता है 'मार्क्स'—
'कि क्या है जग में शाश्वत बोल
नियम से होता सदा विकास !'

अरे इतिहास—
बना कितना अगम्य है किंतु
एक विद्वान सदृश तू नित्य
मानवी आभा का ही पंथ
नहीं है सुख की कोई राह
कि उत्पादक उत्पादन बीच
नहीं है जब तक सामंजस्य
मनुज जो भी करता है नित्य
स्वयं वह घटनाओं की छाँह
देखता हूँ मैं आँखें खोल
बोलता है अब मानव आज
समय रे समय बोलता आज
वर्ग में मानव बँट कर हाय
कर रहा अपना नाश
बन रहा अपना पाश
अरे जीवन का सत् स्वातंत्र्य

वास्तविक भौतिक का विस्तार
और मैं देख रहा हूँ आज
भूत के अगणित पंथी मौन
जा रहे हैं नत शीश...
उदासी के प्रहरी तू सतत
कर रहा रक्षा जिसकी निरत
वही है पाषाणों का बंध
मनुज का सामाजिक संबंध
भूमि पर रख कर पग तू धीर
देख ले ताराओं का लास
किंतु पृथ्वी को कह कर झूठ
नहीं चल सकता तू अनबूझ
सदुपयोगों के माध्यम स्वयं
बनाते तुझको अपना दास
स्वर्ण के पिंजरे में खग बोल
उड़ेगा किस नभ में सविलास ?

राजसत्ता है तेरी शत्रु
नहीं जो जन समाज कल्याण
अरे वह ऐसा विश्व
जहाँ देशों के बंधन दूर
जहाँ मानव हो नहीं दरिद्र
जहाँ मांगेगा कभी न भीख
जहाँ अनजाना अत्याचार,
बनेंगे यह तेरे कर्त्तव्य
राजसत्ता का अंतिम रूप
बनाना होगा वही समाज !

सर्ग—१४

आख्यान :

अनंत जीवन में आज न्याय और अन्याय का घोर संघर्ष हो रहा था—और मेधावी देख देख कर मुस्करा उठा कि......

गहन कालिमा के पट ओढ़े
विकल विकल सी रात सो रही
दूर क्षीण तारों में कोई
टिमटिम करती बात हो रही

मैं चुपचाप देखता चलता
महानगर के राजमार्ग पर
जगमग विद्युत प्रखर दीप हैं
रह जाते हैं नयन चौंध कर

सजी सजी उन दूकानों में
रंग बिरंगी ज्योति हो रही
स्निग्ध पिपासा सी तंद्रालस
करुण स्वरों को संभल ढो रही

स्निग्ध जगमगाती मोटर में
अंध दंभ से भर कर गर्वित
नर नारी जाते हैं हँसते
प्राणों तक धन मद से चर्चित

कहीं सैन्यबल की वह पगध्वनि
कंपित पृथ्वी को करती है

कहीं माध्यमिक पुलिस शक्ति ही
अर्थहीन शोषण करती है

भिन्न भिन्न हैं स्तर मानव की
सत्ता के जिसमें सब चलते
एक मार्ग है जिस पर सब को
चलने के अधिकार न मिलते

मंदिर रेडियो के कंपित स्वर
'रम्बा' गत पर गूंज रहे हैं
कहीं सजग चलचित्र जगाते
असावरी स्वर गूंज रहे हैं

मैं होटल में देख रहा हूँ
'बॉल' हो रहा झूम झूम रे
नयन बचा कर वे नर नारी
लेते आपस चूम चूम रे

फिर मदिरा पीते हैं मिल कर
नारी सतियां बन जाती हैं
पुरुष धर्म के अवतारों से,
सब में तृप्ति उभर आती हैं

किंतु हृदय भीतर जलता है
धन उसके है पास अधिक ही
मैं व्यापार करूँगा ऐसा
गरिमा नत कर दूँगा उसकी

सोच रहा मैं यह क्या जग है
जहाँ द्वेष है, जहाँ पाश है

जहाँ स्नेह का बंधन इनका
भीतर लगता महानाश है ?

ओह ! यहाँ तो अर्थ स्वामि है
यह सब मानव स्वयं दास हैं
अपने एक नशे में भूले
इस समाज के घृणित पाश हैं

धन के अधिकारों में भूले
श्रम से हीन विभव में रहते
अरे इन्हीं की नीली किरणों
में जन जीवन तममय रहते

मैं पथ पर बाहर आता हूँ
कोलाहल अब भी होता है
किंतु सामने एक भिखारी
का फैला कर क्यों रोता है ?

अरे तुझे क्या ठौर नहीं है
जब यह इतने वैभव में हैं
जब इतनी चीजें बनती हैं
तेरी निर्बलता किसमें है ?

अभी सोच ही रहा मौन मैं
दृष्टि उठी क्या देख रहा हूँ
क्या बुर्दाफ़रोश दुनिया में
चलता हूँ यह सोच रहा हूँ !

वह कटाक्ष करती बैठी हैं
सुंदरियां जो मांसल मांसल
क्या उनका जीवन भी सुंदर
क्या ऐसा ही उज्ज्वल उज्ज्वल

जो सतीत्व का गर्व उठातीं
सुंदरियां पथ पर चलती हैं
क्या पति की लोलुप तृष्णा का
साधन नहीं सतत बनती हैं ?

एक ओर विधवा का सूना
जीवन तम की रेख बन रहा
बहु विवाह आर्थिक निर्भरता
स्त्री का है स्वातन्त्र्य बन रहा !

कितनी कारा, कितनी छलना
नारी तो अब भी दासी है
ईश्वर का निवास बतलाता
वह तो पत्थर की काशी है

ओह मजदूर
भोर से संध्या तक तू नित्य
चक्कियों में पिसता है दीन !
घृणा मत कर वैभव के मान
आज यह तन का गर्हित रूप
स्वार्थ की छाया है प्रतिरूप

नहीं यदि उसमें तेरा ज्ञान
और रोटी ही सुख दुख गान

नहीं तू अपने अधर सिकोड़
पेशियों पर उसकी ही आज
रक्त की ऊष्मा तुझमें व्याप्त

मौन नीची नीची दुर्गंध
सील वाली अंधियारी 'खोल'
साँझ में ताड़ी पीकर श्रांत
हँस रहा ज्यों वह रुदन महान

बना कर मानव को तू आज
मशीनों का अभिभूत गुलाम
छोड़ कर बेकारी के सिंधु
बनाता कुत्तों सा निरुपाय

और स्वामी बन कर तू दम्भ
पालता करुणा पर अभिशाप !

(निम्नमध्यवर्ग :)

पवन जो तट पर देता फेंक
लहर हूँ मैं वह चंचल एक
लौट चाहूँ मिल जाऊं पुन:
सिंधु में बार बार रे आज
किंतु पूंजी का भीषण बोझ
चूर करता जाता है नित्य,
बिछुड़ते बालक सा मैं हाय
चाहता फिर पकड़ूँ वह हाथ
कठिनता से सत्ता को धार
निभाता हूँ जीवन का भार
अभागा हूँ मैं कितना पांथ !

नहीं मुझको सुख का है बिंदु
राहु सा ग्रस लेता दारिद्र्य
चमकने से पहले ही इंदु
क्यों नहीं पाऊं मैं अधिकार
बोल तो कैसे हूँ मैं हीन ?
करूँ क्यों आज्ञा पालन नित्य
विवशता में करके तन क्षीण

अरे मुस्कराता हूँ मैं क्यों
मानवता का ह्रास देख यह
मृगतृष्णा में ओ अज्ञानी
भटक रहा है क्यों दुख भी सह

आह रे क्षुधित किसान !
किसे कहते यौवन संगीत
किसे कहते प्राणों का लास
कड़कती सर्दी में जब दाँत
बज उठा करते वज्र प्रहार !
अरे तू बस मेघों का दास ?
छीन लेता सब कुछ भूस्वामि
उगाता जो श्रम से तू खेत
नहीं तेरा उस पर अधिकार !
अरे फोड़ों से गंदे नीच
झोंपड़ों में तू लू से त्रस्त
सभ्यता की बलि जाता हाय
कर लिया करता है चीत्कार,

अरे तेरे शिशु निर्बल काय !
बैल औ' तुझमें कितना भेद ?

वही अच्छे जो करें न काम
सताती है यदि उनको भूख,
किंतु तू तो अब भी है दास
क्रीत सा ही भरता है नित्य

(कवि :)

अविश्वासों के अंधे नाद
भेद कर मैं करता चीत्कार
गूंज कर टकरा कर हो चूर
लौट जातीं व्याकुल टंकार

जागता है नयनों में स्वप्न
स्वर्ग की मधुर मधुर द्युति लीन
कांपती है मेघों में क्षीण—
किंतु मैं तो दुख से हूँ त्रस्त

कहाँ है वह कल्याण प्रकाश
विश्व में क्यों इतना दुख आर्त
असाम्यों पर के राज्य महान
चूर करता मानव का मान

दंभ हो टुकड़े टुकड़े आज
वज्र सा टूट पड़े यह क्रोध
प्राण का करता है व्यापार
वासना के प्याले के लोभ ?

सहस्रों तेरे रहें गुलाम
और तेरी सत्ता का स्वार्थ !
कौन सी दानवता के हेतु
झुका दूँ अपना शीश महान ?

(दार्शनिक :)

अरे ईश्वर की करता खोज
शून्य में उड़ता कब तक बोल !
नयन मेरे जब तक थे बंद
स्वर्ण से देता था तू तोल

धर्म औ' भाग्य कलुष यह घोर
मानवी सुख के भीषण शत्रु
बना कर अपने मित्र
कर रहा सब पर अत्याचार !

न सुन अब नभ की वह आवाज़
नहीं होगा कोई इलहाम
सत्य होगा न कल्पना मूर्ख
न होगा माध्यम बना गुलाम

देख मीनारों के तल आज
चोट करती हैं रूढ़ि अपार
आह मिथ्या पर स्वर्णिम वस्त्र
बिछा कर प्रतारणा का भार ?

इसी जग में हो जाये स्वर्ग
इसी जग में मानव हो देव

यहीं का वह संगीत अमोल
बनेगा चिर सुख की मधु रेख

(वैज्ञानिक :)

मनुज के सुख के हेतु अबाध
बनाता सुख के साधन नित्य
किंतु तू धन से करके तोल
चूसता है लाखों का रक्त
बनाया जो मैंने दिन एक
भेदने को पहाड़ का वक्ष
आज तू मानव पर कर वार
सजाता है अपने ही कक्ष
दास मैं रह न सकूंगा, मुक्त
हो न पायेगा कभी विकास !!
अहिंसा की छलना के स्वप्न
अरे हत्याओं के इतिहास !
पार कर दिये अगम जो सिंधु,
सैकड़ों मील कर दिये पास,
गगन को नाप दिया उन्मुक्त,
वायु में शब्द बने सविलास,
गीत बाँधे मिट्टी पर, और
सैकड़ों अन्वेषण का प्यार
आज क्या हो मानव का ध्वंस
करेंगे छलना का विस्तार ?

देख कर कांप उठा यह हृदय
कहाँ है जीवन का उल्लास

अरे ओ अंधकार के मेघ
कर रहा क्या छाया घनघोर ?
देखता हूँ मैं यह क्या हाथ
नाचते हैं जग में कंकाल,
सूर्य्य की ज्योति रही है फैल
किंतु मानव है तम में आज
पटकता सिर पाषाणों बीच
आर्त्त करता है हाहाकार,
शिलाओं के भीषणतम बोझ
दबाते तोड़ रहे हैं शक्ति
रुधिर से सन जाती है भूमि
कराहों से नभ में यह गूँज
प्रबल मँडराती बनी पिशाच
अरे अज्ञान !
मृत्यु की भीषण छाया भयद
बना तू रुद्ध कर रहा कंठ !
त्रस्त नयनों में तेरा हास
बन गया महा गरल की आग
कर्म में निरत नहीं विश्राम
नहीं जीवन में चिंता शेष,
क्रिया चिंता के छूटे हाथ
तिमिर में मिल न रहे हैं हाय
आज मानव जीवन का स्वर्ग
नरक की वास्तवता का दास
आज कुलनारी का अभिमान
एक वेश्या की दीर्घ उसास

नुची कलियों की निर्बल आह
घिर रही है कांटों के बीच
घास पर ओस चमकती दीप्त
सूर्य्य किरणों का केवल एक
एक क्षण का कोमल अभिसार
निशा के गहरे स्तर स्तर भेद
गूंजता मिल का भीषण नाद
अरे दासों से शृंखल बद्ध
चले जाते पिसने मजदूर
पसलियों पर खाकर भी चोट
हाँफते श्रम में निरत किसान
अभागी आशा जल में डूब
बुलबुलों की दिखलाती प्यास
शीश धुनता है आज समाज
चाहता हो जाये वह मुक्त

किंतु ज्वर शय्या पर हो दीन
कराहों से चिल्लाता आर्त्त
घाव से उसका तन है शीर्ण
अरे बरों उठता दुख प्राप्त...

अंध विश्वास और अज्ञान
रूढ़ि छलना का पकड़े छोर
मृत्यु की पगध्वनि पर भर ताल
नाचते मर कर भीषण रोर

भूख से शैशव जाता बीत
भूख में यौवन होता क्षीण
जरा का ही छाता अवसाद

जन्म से मृत्यु एक ही गीत
निरंतर श्रम, उत्पादन घोर
और कुछ भी कर में अप्राप्त
आह रे मानव के सुख साज
प्रबल यह अंधकार की टीस
सर्व रे सर्वनाश का घोर
मचलता रह रह अट्टहास !
तिमिर में से वह उन्नत गर्व
उठाती हैं मीनारें शीश

भयद सेनाओं की वह घोर
कंपाती पगध्वनि पृथ्वी आज
त्रस्त साज न समाज यह देख
गुदड़ियों में रो उठता हाय
इधर मरते हैं भूखे किंतु
उधर सागर में फ़सलें डाल
नफ़ों का करते हैं उद्धार
अरे ओ महापिशाच !
रोक दे अपना हाथ !!
नहीं सह सकता आज मजूर
नहीं सह सकता आज किसान
रोक दे यह हत्या व्यापार !

हँस उठा पर वह पुरुष सगर्व
अंक में जिसके नारी कांप
रुद्ध सी लिये बनावट प्यार
मारती एक कटाक्ष
और वह पुरुष लिये कर एक

अदय कोड़ा कर रहा प्रहार
घूमता जन समाज श्रमलीन
कर रहा हाहाकार
अरे वह पूंजीवाद !
धर्म अपने हाथों को उठा
दे रहा उसको आशीर्वाद
प्रबल सेनाएं लेकर शक्ति
कर रहीं उसकी रक्षा आज

और उसके पीछे था वृद्ध
मखमली वस्त्रों में मदमत्त
जीर्ण सा निर्बल साम्राज्यवाद,
मित्रता से कंधे पर धरे
पुलकता अपना प्यार !
स्वर्ण की ढेरी पर हो खड़ी
एक नंगी नारी सविलास
पिलाती उसे शराब
और वह रह रह उठता भूम
विलसती नारी का मुख चूम
महामद में वह ठोकर मार
दरिद्रों के तन पर उन्मत्त
कर रहा अट्टाहास

गगन के तारो यह लो देख—
बहुत दिन से तुम देव विलास ?
आज भी दोनों उंगली उठा
दिखाते हैं आकाश—
भूमि पर जैसे यह तम पाश

नाश की लहरों का यह खेल
सत्य है, शाश्वत है अनमोल !!

भूमि के महावक्ष पर देख
अनेकों कारागृह हैं मुक्त
भग्न होगा 'लंदन' यह गर्व !
'रोम' से पूछ, 'मिश्र' से पूछ
हँस उठा पाटलिपुत्र सखेद
आह 'बर्लिन' के भीषण गरल
फूंकता जग भर में विध्वंस !
अरे 'न्यूयार्क' स्वर्ण की धार
कटेगी इस लोहू से देख

प्रकृति का नियम यही है एक
कि अति का होगा ही विध्वंस
युगों के शोषण का यह क्रोध
अरे मानवता का विक्षोभ
सत्य के पथ का नव निर्माण
नहीं रुक सकता कभी अबाध
नहीं झुक सकता वह निर्बाध !

अभी पैरिस कम्यून की याद
नहीं भूले थे वह पाषाण
तभी जनता में नूतन स्फोट
कर उठा महाक्रान्ति का गान

उठ गई प्रबल भुजाएं आज
गरज कर उठता लेनिन वीर
खोद कर जड़ से फेंका आज

युगांतर का वह विषमय वृत्त
कांपता साम्राज्यवाद
कांपता पूंजीवाद
मंत्रणा करते दोनों, किंतु
वहाँ तो जागा ऐसा चित्र
न जागा अब तक कहीं अबाध
न था ऐसा अब तक संतोष
कि मानव मानव एक समान
दूर हों बंधन
विश्व कुटुंब

चल पड़ा तभी एक यह वृद्ध
नग्न भारत का ज्योतिर्बिंब
हिल उठा फिर से साम्राज्यवाद
वार करता उस पर अभिभूत
हार बनती जाती हर जीत
स्वयं हो उठता लज्जित क्रुद्ध
रक्त से भींग चुकी है धरा
गगन में उमड़ चुका है ध्वंस
किंतु यह जनता की चिरशक्ति
निरंतर चली जा रही राह
आज भी वह है चिर दुर्दम्य
कौन कहता हम हैं निःशक्त
पराजय की छाया में भग्न !

विश्व भर में अपने सम त्रस्त
अनेकों जन उठते हैं आज,

एक दिन यह जो देश विदेश
बीच लोहे की उंगली उठीं
भीच कर अत्याचारी राज
मुक्त कर देगी जनता—मुक्त
और तब सभी राष्ट्र हो साथ
नाच कर बेसुध मग्न विभोर
भरेंगे जन जन में नव प्राण
कला विज्ञान सभी चैतन्य
करेंगे लयमय नृत्य !
सचेतन हो जा फिर मन आज
कि वह इंगलैंड फ्रांस मिल आज
छल रहे जर्मन देश
'वार्साई' की घृणित अतीत
महाछलना ले देख !

उठ रहा है वह पूंजीवाद
लिये 'हिटलर' की गुड़िया मात्र
कांपता यूरुप, सारा विश्व
अंधेरा फैला है सब ओर,
देवताओं का ले अभिमान
उधर आता है वह जापान !
झूंठ में सराबोर इंगलैंड !
तड़क जायेगा तेरा दंभ
चूर हो जायेगा अभिमान !
अरे तेरे ही वह मजदूर
ध्वस्त कर देंगे वह मीनार !
जालियों से न रुकेगी धूप,

दीप पर रखेगा जो वस्त्र
छिपाने को उसका आलोक
जल उठेगा वह ही हो दीन...

आह यह कैसा भीषण रूप
डराता मानव सत्ता आज
नाचता है उन्मुक्त...

(फ़ासिस्टवाद का नृत्य)

मैं क्रुद्ध विभीषण नाच रहा
लो कुचल दिये हैं देश देश
लो पीसे जीवन औ' विवेक
आनंद गया वैभव बिखरा
वह उठा राज्य लड़खड़ा गिरा

यह सारा जग मेरे पग तल
घायल सा रुद्ध कराह रहा

लो आग लगी जग में भीषण
हिल गई भूमि कँप गया गगन
जल गये अन्न से भरे खेत
हुंकार रहा हूँ शांति भेद

मेरी भय गर्जन सी मशीन
का जहर गरजता व्याप रहा
भड़ भड़ कर तोपें भड़क रहीं
धूं धूं बंदूकें कड़क रहीं
वह प्रलय लहर सा टैंक चला

मेरे श्वासों ने विष उगला
नभ में बिजली सा कड़क कड़क
बम मार आग है डाल रहा

सागर पर तूफ़ानों से उठ
हैं धांय धांय करते जहाज़
लो आग लग गई घर घर में
है डगर डगर शोषित पुकार
दलितों गुलाम की छाती पर
लो हँसता जन संहार रहा

कंकाल कर रहे चीत्कार
नर नारी करते हहाकार
जो प्यासा तड़प तड़प मरता
मैं उस पर करता अट्टहास

मैं रक्त मांस पर मचल मचल
कर मृत्यु तिमिर से लास रहा
डाढ़ें निकाल कर भयद विकट
मैं ध्वंस करूँ मजदूर कृषक
मैं वर्गों में जग बाँट, पियूँ
शोषित आँसू से भरा चषक

मैं हूँ मानव का शत्रु प्रबल
हूँ निर्बल पर हुंकार रहा

कर दूँ गुलाम सारे जग को
फिर कुचलूँ मैं निर्दय सब को
लूटूँ असाम्य पर विश्व बना
थर्रा दूँ जीवन को सुख को

२५०

होना स्वतंत्र शासन करना
बस मेरा ही अधिकार रहा

घर बार न मानव को बाकी
संस्कृति बन जायेगी दासी
बर्बरता की वासना बढ़ी
विद्रोह मिटे—रे आशा भी

पशु बल से विजित रुँदा परवश
जीवन है क्षुब्ध पुकार रहा

मैं हूँ तृष्णा का आडंबर
मैं शासक का बल यंत्र अमर
मैं तो अंधा दुर्भिक्षों के
पग धर चलता स्वार्थी मंथर

रक्तोन्मद-मानव वंदन कर
नव-ऊष्ण-रक्त-बलि वार रहा

मानव खा मेरी भूख मिटी
संग्राम खेल, सब दास मही
मेरी अंगराई में उभरी
चिर शांति प्रगति लड़ खड़ बिखरी

मैं विस्फोटों का आर्त्तनाद
हत्या को करता प्यार रहा
मैं हूँ फ़ासिस्ट सैन्य बल जो
जग पर कर अत्याचार रहा
मैं क्रुद्ध विभीषण नाच रहा

अभी मैं देख रहा यह नृत्य
रूस में बज उठते थे शस्त्र

और जागे मज़दूर किसान
(दलित जग भर के पावे त्राण)
काटते हैं लोहे से लौह
दिगंतों से थहरा कर स्वार्थ
वर्ग मानों की बिखरा नींव
उठ रही घहर घहर आवाज़—

(गीत)

हे जनशक्ति महान
जागो और जगाओ

हम पृथ्वी स्वर्ग बनायेंगे
हम दुनिया नई बसायेंगे
हम महाजागरण गर्जन कर
अविराम चेतना लायेंगे

हे मज़दूर किसान
जागो और जगाओ

हम जलती आग बुझायेंगे
मानव संतोष जगायेंगे
हम ज्योति लिये उन्नति पथ पर
अविरत बढ़ते ही जायेंगे

हे जन गौरव प्राण
जागो और जगाओ

हम श्रम का वंदन करते हैं
मेधा का गायन करते हैं

हम मानव का निर्माण अमर
लख कर सुख गर्जन करते हैं

हे जीवन अभिमान
जागो और जगाओ

जीवन मरु उपजाऊ करदें
तम में उजियाला सा करदें
हम रूढ़ि नाश, भय कर समाप्त
मानवता को उन्मुक्त करें

हे सत्यों के गान
जागो और जगाओ

हम हैं नवयुग के अग्रदूत
हम काल-जलधि-नाविक अभूत
हम साम्य दीप के नव प्रकाश
हम विजयोन्मादी क्रांतिपूत

हे प्रदीप्त गति-मान
जागो और जगाओ

(चीन की पुकार :)

हमारी बंशी में जब हिंद
फूँक कर गा उठता था राग
करोड़ों कंठों से जयगान
फूटता बन जग का कल्याण

हमीं ने योगी को सविलास
सजाया था, मिल मिल कर साथ

हमारे दो नयनों ने सत्य
ढूंढने का श्रम किया अबाध

आज भी हम दोनों हैं बंधु
अमृत में घुला गरल का पाप ?
हमारी उदारता ही हमें
बन गई है सहसा अभिशाप

आज फिर दोनों कंधे मिला
गरज से कँपा रहे हैं विश्व
हमारे नद गिरि निर्झर आदि
अभी तक चिर करुणा से सिक्त

अरे हम दो चरणों से मुक्त
नाच ले महाध्वंस का नृत्य
कि जिसकी गूँजभरी लयतान
बनेगी नवल सृजन का कृत्य

हमीं थे अन्वेषक आरंभ
हमीं ने जग में अब्द सहस्र
भेद कर शांतिमयी लयतान
गुंजा दी थी कर ध्वस्त तमिस्र

ब्रह्मपुत्रा का रस वरदान
दिया भारत को हमने पुलक
हमीं ने आदिरूप का प्यार
लिया भारत से हिलमिल किलक

विजय है अपनी-जीवन-सत्य—
ज्योति की प्रथम किरण लघु एक

एक वह कण जिस पर निर्माण
नई संस्कृति का होगा देख

(हिंद की हुंकार :)

अपराजित है राष्ट्र हमारा
सदियों की लहरों को झेले
अडिग अभी तक देश हमारा

जब जग भर में अंधियाला था
हिंद चीन ने ज्योति जगाई
इनकी प्रतिध्वनि बन औरों ने
चिर जीवन की रागिणि गाई

जब अत्याचारी वन पशु थे
यहाँ बही करुणा की धारा

झंडा ऊंचा शक्ति चिन्ह सा
सत्य शांति सौंदर्य विभा पर
महा प्रगति के रंग खिल उठें
जैसे चिर प्रकाश का निर्झर

अरे सर्वहारा की जय हो
जिनका श्रम जीवन की धारा

आग लगा देंगे जग भर में
जहाँ जहाँ शोषण होता है
वहाँ वहाँ है रक्त बहाना
जहाँ जहाँ मानव रोता है

हम साहसी वीर निर्भय जय
झुक न सकेगा शीश हमारा

यहाँ अनेकों संस्कृति पलतीं
यहाँ नई धारा नित बहतीं
मानवता के ही बल पर तो
हमने इतनी आँधी सह लीं

सबसे पहले मानव हैं हम
विश्वशांति है ध्येय हमारा

एक उठी हुंकार भयंकर
काँप उठेगी दुनियां सारी
एक गरज से थहर उठेंगी
सप्तसिंधु की लहरें भारी

इतिहासों में ज्ञान हमीं है
निर्विकार है देश हमारा

लाखों बलिदानों से पृथ्वी
अब भी लाल रँगी दिखती है
अरे क्रान्ति की श्वास अग्नि हम
रग रग में हलचल मचती है

यह भारत विराट् मानव सा
ज्योतित करता मार्ग हमारा

बार बार हम जब जब जग में
असत् करेगा उन्नति पाशव
अपनी सारी शक्ति युक्त तब
युद्ध करेंगे उससे मानव

त्राण करेंगे प्राण भरेंगे
जग कल्याण विकास हमारा

जब जग भर होगा कुटुंब सा
जब समानता फैलै सुंदर
जब तारों में कीर्त्ति मनुज की
गूंज उठेगी गगन भेद कर

तब भी हमीं विश्वपथ दर्शक
तोड़ेंगे कलुषों की कारा

हमने सूर्य्य बने अब तक भी
जग भर को आलोक दिया है
अरे हमारे ज्ञान-अन्न से
मानव अब तक पला जिया है

हम लाखों बरसों के पंथी
कभी न जीत सका अंधियारा
अपराजित है राष्ट्र हमारा

मुक्त होगा यह मेरा हिंद
मिल उठेंगी यह अगन तरंग
और विलुड़ित होगा उस दिवस
पाप को डुबाडुबा कर सिंधु

जहाँ जनता का होगा राज
जहाँ मानव होगा आज़ाद
जहाँ दुनिया होगी आज़ाद
जहाँ पर ज्ञानदीप की ज्योति
उज्ज्वला कर देगी संपूर्ण
विषद भूमा का सुंदर रूप
आह सत् पथ की दुंदुभि बोल
हृदय में भरदे चिर उल्लास.....

घुमड़ती आँधी होती दूर
और मैं हँसता हूँ सविलास
एक दिन मानव का श्रम श्वास
मिटा देगा यह पाप महान
विश्व होगा केवल सुखस्थान...

एक घर सी होगी यह भूमि
और भौतिक के दुख कर चूर
बनायेंगे मानव वह पंथ
जहाँ शोषण का रहे न नाम
जहाँ का सत्य वास्तविक सत्य
जहाँ स्वातंत्र्य साम्य सुख शांति
करेंगे निशिदिन नृत्य
और परिवर्त्तन-पथ पर सतत
ज्ञान का पकड़े हाथ
चलेंगे जगमग मुक्त......

श्री रांगेय राघव की अन्य रचनाएं

१. घरौंदे (उपन्यास)
२. विषादमठ („)
३. देवदासी (कहानियाँ)
४. तूफ़ानों के बीच (रिपोर्ताज संग्रह)
५. साम्राज्य का वैभव (कहानियाँ)
६. अजेय खंडहर (खंडकाव्य)
७. राह के दीपक (कवितायें)
८. पिघलते पत्थर (कवितायें)
९. समुद्र के फेन (कहानियाँ)
१०. भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका (विवेचन)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	१	स्पंदन सा	स्पंदन से
४७	२२	सुंजन	सृजन
५४	२२	गति रे	गति से
७४	४	ग्रपने	अपने
७४	२४	ढंडी	ठंडी
७५	१	ढंडा	ठंडा
८६	१६	ऊं	ॐ
११०	२६	ग्रोर	और
१११	१	मी	भी
११७	१८	ही जागरण	ही यह जागरण
१२४	९	धूर्णित	घूर्णित
१२४	१५	मरूँ	भरूँ
१२५	९		
१२६	११	में	मैं
१२७	३	मघु	मधु
१२८	१९	मघुहषित री	मधुहर्षित री
१२९	१	जग तरी	जगत री
१४०	१७	मोहिनजोदरो	मोअन-जो-दड़ो
१४१	१७	मुज	भुज
१४३	२०	उल्लाह	उल्लास
१४४	६	उग्दमा	उद्गमा
१४६		सारे ऊं के लिये	ॐ
१४७			

१४८	२४	उक्का	उल्का
१५५	४	अब्रवीत्	अब्रवीत्
	७	स्पदनों	स्यंदनों
	८	खड्ड	खड्ग
१७३	१३	अमावे	अभागे
१७५	१५	अम्ल	अल्प
१८२	२२	चलता	जलता
१९८	२०	फैलाते थे	फैलाते हैं
२००	२	शाक	शक
२०१	३	कंजों	कुंजों
२०८	७	समाजिक	सामाजिक
२११	२२	मार्ग का	मानव का
२२०	७	आल्लाहो	अल्लाहो
२२३	१६	बाला	वाला
२५१	१२	साज न	सा जन

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	१	स्पंदन सा	स्पंदन से
४७	२२	सुंजन	सृजन
५४	२२	गति रे	गति से
७४	४	शपने	अपने
७४	२४	ढंडी	ठंडी
७५	१	ढंड़ा	ठंडा
८६	१६	ऊं	ॐ
११०	२६	ओर	और
१११	१	मी	भी
११७	१८	ही जागरण	ही यह जागरण
१२४	९	घूर्णित	घूर्णित
१२४ १२५	१५ ९	मरूँ	भरूँ
१२६	११	में	मैं
१२७	३	मघु	मधु
१२८	१९	मधुहषित री	मधुहर्षित री
१२९	१	जग तरी	जगत री
१४०	१७	मोहिनजोदरो	मोअन-जो-दड़ो
१४१	१७	मुज	भुज
१४३	२०	उल्लाह	उल्लास
१४४	६	उग्दमा	उद्गमा
१४६ १४७		सारे ऊं के लिये	ॐ

१४८	२४	उक्का	उल्का
१५५	४	अब्रबीत्	अब्रवीत्
	७	स्पदनों	स्यंदनों
	८	खड्ग	खड्ग
१७३	१३	अमावे	अभागे
१७५	१५	अम्ल	अल्प
१८२	२२	चलता	जलता
१९८	२०	फैलाते थे	फैलाते हैं
२००	२	शाक	श[illegible]
२०१	३	कंजों	कुंजों
२०८	७	समाजिक	सामाजिक
२११	२२	मार्ग का	मानव का
२२०	७	आल्लाहो	अल्लाहो
२२३	१६	बाला	वाला
२५१	१२	साज न	सा जन